अरावली
के
आँसू

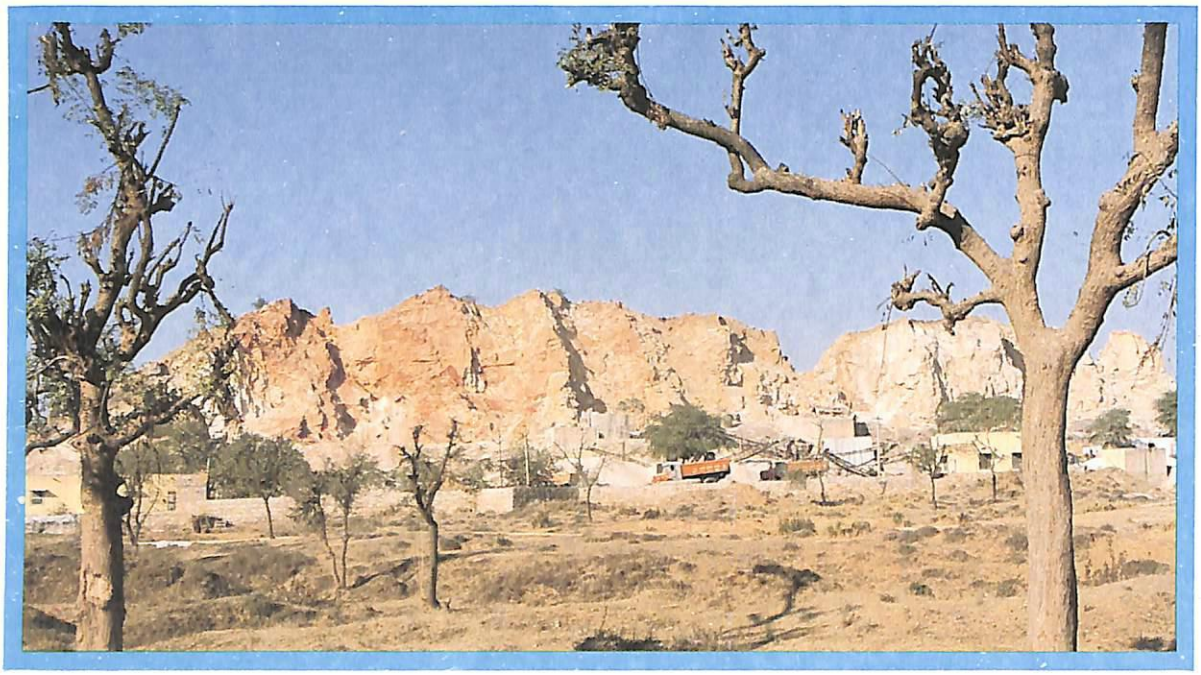

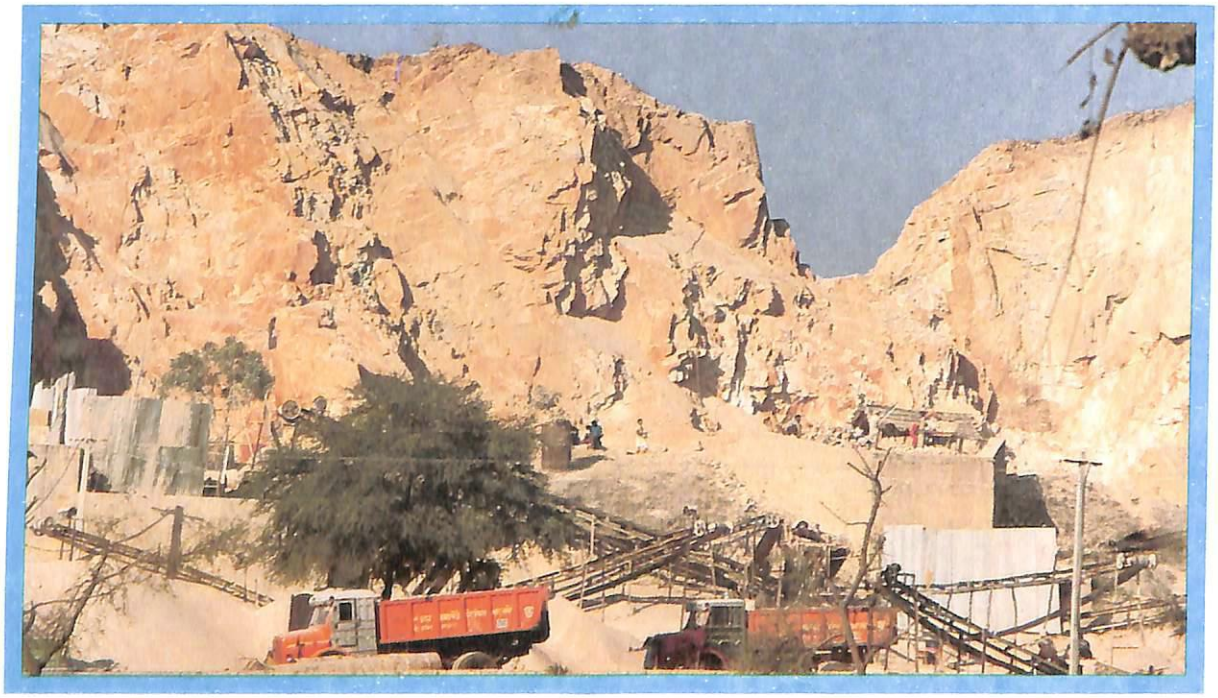

अरावली के आँसू

राजेन्द्र सिंह

तरुण भारत संघ
भीकमपुरा- किशोरी
थानागाजी
अलवर - 301 002

अरावली के आँसू

लेखक : राजेन्द्र सिंह

संस्करण : जून 1998

प्रकाशक : तरुण भारत संघ

मूल्य : 15 रुपये

मुद्रक : कुमार एण्ड कम्पनी, जयपुर

प्रस्तावना

पिछले 23 वर्षों से तरुण भारत संघ अरावली को नंगेपन एवं बिगड़ते स्वरूप से दुःखी व चिन्तित है। पहले तो जगह-जगह शिविर-सम्मेलन करके अरावली की पारिस्थितिकी सुधार हेतु वृक्षारोपण, भू-संरक्षण व जंगल-संरक्षण के लिए युवाओं को तैयार करने का काम करता रहा। 1982 में जमुवारामगढ़ के सानकोटड़ा में खनन के लिए कटते जंगलों को देखा था। वहाँ इस बरबादी को रोकने हेतु भावनी, कालीखोर, थली, बोरोदा, नीमला, श्रीनगर, उगोता आदि गाँवों में बहुत से शिविर युवाओं के साथ आयोजित किये थे।

1985 में अलवर जिले के थानागाजी, भीकमपुरा, किशोरी, सूरतगढ़ माण्डलवास, भांवता, देवरी, राडा आदि गाँवों में जल-जंगल-जमीन संरक्षण का सृजनात्मक कार्य शुरू किया। 1987-88 में राजगढ़ तहसील के तिलवाड़ी, तिलवाड़, गोवर्धनपुरा, मल्लाना तथा पालपुर गाँव में खनन कार्यों में लगे मजदूरों के साथ रहकर काम करने का अवसर मिला।

पहले तो हम यह मानते थे कि खनन से केवल पर्यावरण का मामूली सा नुकसान होता होगा, लेकिन गरीब लोगों को रोजगार देता है, राष्ट्र विकास के लिए पूँजी निर्माण करता है। इसलिए खनन जरूरी काम है, लेकिन खनन में लगे परिवारों में रहने उनके जीवन के कष्टों को समझने से हमारा विचार बदला।

हमने देखा खनन में लगे मजदूर तो मालिक थे अब ये मजदूर बन गये हैं। मजदूर भी भरपेट खाने वाले नहीं बल्कि भूखे पेट काम करने से कुपोषण का शिकार होकर 35-40 वर्ष की उम्र में ही अपने जीवन को समाप्त करने वाले बन गये हैं। जिन क्षेत्रों में खनन चल रहा है, वहाँ का परिवेश तथा पर्यावरण दोनों ही बिगड़ गये हैं। बिगड़ते-बिगड़ते ऐसे हालात हो गये हैं, जहाँ से वापस लौटना मुश्किल है, बिगड़े हालात को सुधारना मुश्किल है। यह सब आगे भी ऐसे ही बिना सोचे-समझे धापं-धुपं इसी प्रकार चला तो सब कुछ नष्ट हो जायेगा।

1988-89 में इस सब पर विचार हेतु **नीलकण्ठ** में एक शिविर आयोजित किया। गाँव में अखण्ड रामायण पाठ आयोजित करके जंगलात विभाग के दोहरे चरित्र का पर्दाफाश किया। विभाग एक तरफ जंगल की जमीन पर खनन कराने हेतु पेड़ काटने तथा खनन पट्टों के लिए स्वीकृति दे रहा था दूसरी तरफ जंगल में रहने वाले लोगों को जंगल से बाहर निकालने के लिए कार्यवाही कर रहा था। इस सब पर सरिस्का वन क्षेत्र में बसे 22 गाँवों तथा इसके **बफर** तथा **पैरीफैरी** क्षेत्र में बसे 165 गाँवों के साथ खुलकर लम्बी चर्चा हुई। लोगों ने जब इस सब पर सवाल खड़े किये तो विभाग ने 377 ग्रामीण व्यक्तियों के खिलाफ कानूनी कार्यवाही शुरू कर दी थी।

ग्रामीण तथा विभाग में दूरी बढ़ने लगी। इसे कम करने के लिए गाँव-गाँव में रामायण पाठ आयोजित हुए, इनमें विभाग के वनकर्मी तथा ग्रामीण दोनों ने समान रूप से शिरकत की, आपस में बातचीत हुई तो अपने आपसी वैर-भाव भुलाकर दोषी व्यवस्था को ठीक करने का संकल्प लिया गया। इस संकल्प को साकार करने हेतु 14 जनवरी से 21 जनवरी 1990 तक भर्तृहरि जंगल में संरक्षण यज्ञ का आयोजन हुआ। इस यज्ञ में पहाड़ों तथा जंगल की रक्षा हेतु जंगल क्षेत्रों में चल रहे खनन को बन्द कराने का संकल्प हुआ।

साथ ही साथ खनन क्षेत्रों में काम कर रहे मजदूरों के विषय में भी गम्भीरता से विचार किया गया। मजदूरों का संगठन बनाना उनके स्वास्थ्य परीक्षण आदि का काम शुरू हुआ। खान मालिकों ने इस प्रयास को निष्फल करने के सभी प्रयास किये। तरुण भारत संघ के महामंत्री, कार्यकर्ताओं की हत्या तक के प्रयास किये। लेकिन मजदूर दिखाने के लिए खान मालिकों के साथ थे, मन से तरुण भारत संघ का साथ दे रहे थे। इसीलिए खान मालिकों का कोई दुष्प्रयास सफल नहीं हुआ।

मजदूरों ने ही **मल्लाणा** गाँव में तथा आसपास में जिस वनभूमि पर खनन चल रहा था, उसे बन्द कराने हेतु 'सत्याग्रह' किया था। **पालपुर** में भी लोगों ने सड़क रोककर खनन बन्द किया था। इससे तरुण भारत संघ का उत्साह बढ़ा। खनन बन्द होने पर विकल्प रोजगार के लिए वृक्षारोपण हेतु वन विभाग पर दबाव बनाकर क्लोजर बनवाने का काम किया था। साथ ही साथ जोहड़ व चैक डैम, खेत सुधार का काम शुरू किया।

खनन के कारण बिगड़े खेतों में भी चैक डैम, एनिकट, बाँध-जोहड़ आदि का निर्माण कार्य किया। यहाँ के सफल प्रयोग ने यहाँ के समाज के मन में एक उत्साह पैदा किया। अरावली क्षेत्र में चल रही पत्थरों की लूट-खसोट से जो अरावली पर्वत मालायें निर्वस्त्र हो गई थीं, रोने लगी थीं। **अरावली के आँसू** पुस्तक इसी कहानी को प्रकट करती है। इस पुस्तक का सम्पादन श्री रमेश थानवी जी ने किया है। मैं इनका हृदय से आभारी हूँ।

– राजेन्द्रसिंह, महामंत्री, तरुण भारत संघ

1

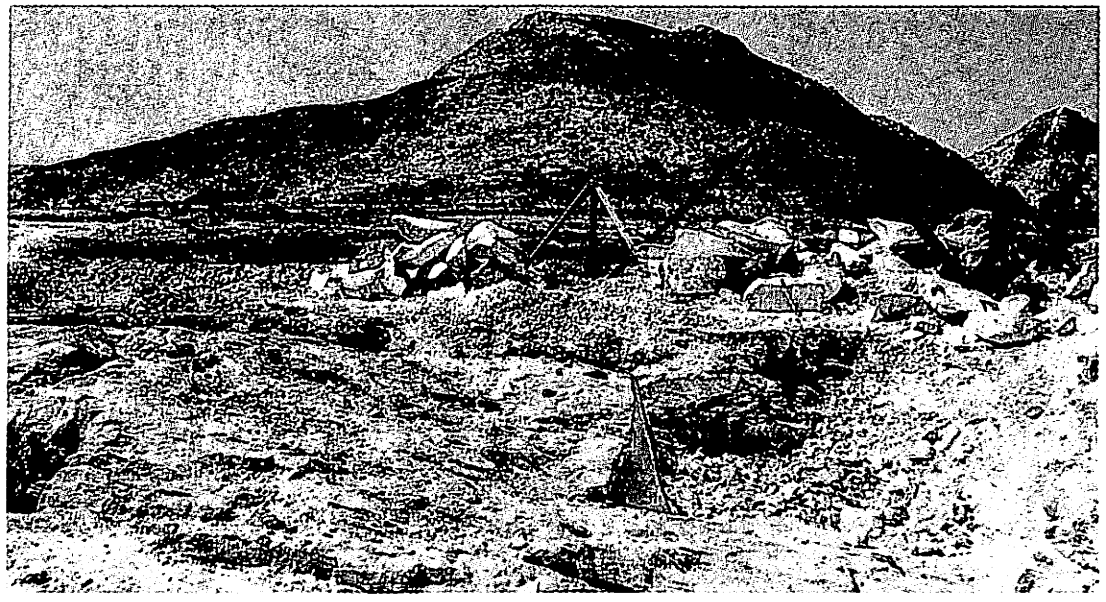

मेरो दरद ना जाने कोय

दुनिया की प्राचीनतम पर्वत शृंखला अरावली भारत के चार राज्यों में फैली है। राजस्थान के 16 जिलों में 43,315 वर्ग किलोमीटर, गुजरात के 2 जिलों में 5,466 वर्ग किलोमीटर, हरियाणा के तीन जिलों की 8 तहसीलों में तथा दिल्ली के महरौली क्षेत्र में फैली अरावली में लगभग 27 हजार वर्ग किलोमीटर घोषित वन क्षेत्र है। इस क्षेत्र में 5 राष्ट्रीय उद्यान, 4 बाघ परियोजनाएँ, 17 वन्य जीव अभयारण्य हैं। इनके बावजूद अरावली पर्वत शृंखला नंगी होती जा रही है।

इसके बिगड़ते पर्यावरण को देखते हुए उच्चतम न्यायालय के नियमों की पालना में भारत सरकार ने 7 मई, 1992 को पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 की धारा 3 (1) और धारा 3 (2) (फ) और पर्यावरण संरक्षण नियम 1986 के नियम 5 (3) (घ) के अधीन अन्तिम अधिसूचना जारी की थी। इस अधिसूचना द्वारा अरावली में पर्यावरण-विरोधी सभी गतिविधियों पर रोक लगा कर उन्हें गैर-कानूनी करार दिया था।

वन्यजीव अभयारण्यों, राष्ट्रीय पार्कों तथा बाघ परियोजनाओं के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों में चल रहे खनन को भी रोक दिया गया था, लेकिन आज तक भी इस कानून को अरावली क्षेत्र में लागू नहीं किया गया है।

उच्चतम न्यायालय के आदेश से सरिस्का बाघ परियोजना में चल रही खदानों में से 262 खदानें बन्द कर दी गई थीं, जिनमें कुछ खदानें आज भी रात में चोरी-छिपे चल रही हैं। शेष 208 खदानों के मालिक अपनी खदानों को चलाये रखने के रास्ते खोज रहे हैं। सबसे पहले तो इन्होंने भारत के पर्यावरण मन्त्री पर दबाव डालकर 15 जुलाई 1996 को एक उच्च स्तरीय समिति का गठन करा लिया है। यह समिति खान चलाये रखने के रास्ते खोज कर 15 दिन में पर्यावरण मन्त्री को रिपोर्ट देगी। यह सरकारी प्रक्रिया निश्चित ही खान-मालिकों को खुश करने के लिए आरम्भ की गई है।

राजस्थान की राजनीति के अधिसंख्य नेता यहां के गरीबों के प्राकृतिक संसाधन, जंगल व पहाड़ों को लुटवाने पर आमादा हैं। इस कार्य में शासन के लोग न्यायतन्त्र को भी अपने हित में उपयोग करने से नहीं चूक रहे हैं।

अरावली के सरिस्का क्षेत्र के लोगों की पर्यावरण-चेतना के कारण 22 दिन तक सत्याग्रह चला, जिसके परिणामस्वरूप इस क्षेत्र

में खनन पूर्णरूपेण बन्द रहा। लेकिन यहां के शासन पर त्याग व समर्पण भाव से किये गये सत्याग्रह का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा है।

हमारे देश की पर्यावरण नीति में स्पष्ट उल्लेख है कि भारत के पहाड़ी क्षेत्रों में 66 प्रतिशत भूमि पर वन होने चाहिए तथा मैदानी क्षेत्रों में 33 प्रतिशत भूमि पर जंगलों का होना अनिवार्य है। इस नीति को बने भी एक दशक बीत चुका है, लेकिन आज भी वन-क्षेत्र बड़ी तेजी से घटते जा रहे हैं। इसमें राजस्थान की स्थिति तो और भी भयावह है। यहां पर अरावली के पहाड़ी क्षेत्र में कुल 6 प्रतिशत भूमि पर जंगल शेष हैं।

उक्त आंकड़ों से यह बात सिद्ध होती है कि हमारी सरकार की नीति देखने में बहुत अच्छी लगती है, लेकिन इसका व्यावहारिक रुख उतना ही उलटा है। इसका सारा दोष केवल सरकार पर ही मढ़ना ठीक नहीं है। हम भी सुख-भोग-दिखावे में फँस कर राज्य के प्रलोभन में आ रहे हैं, और अपने ही हाथों से अपने संसाधनों को लुटवा रहे हैं। आज के राज्य ने ''मत्स्यबकुलीकरण'' की कहावत को चरितार्थ कर दिया है। यह कहानी अरावली के संदर्भ में और भी खरी उतरती है।

अरावली के पेड़ लुट गये हैं। अब केवल कुछ पहाड़ शेष रहे हैं। उन्हें भी गरीबों को रोजगार देने के नाम पर उन्हीं से खुदवा-खुदवा कर लूट रहे हैं। बेशकीमती वनस्पतियों की जड़ों की इस खुदाई से हम प्रलय को करीब बुला रहे हैं। विकास की जगह विनाश की ओर धकेल रहे हैं – जंगल, जमीन और जीवन को। अरावली को अभी प्रलय से बचाने का समय है, बशर्ते कि हम वर्तमान सरकार को कह दें कि हमें हंस नहीं बनना है। हम जैसे हैं, हमें वैसे ही हमारे हाल पर छोड़ दो, हमारे संसाधनों को लूटना बन्द करो, हम स्वयं ही अपने पहाड़ व जंगलों को बचा कर अपना जीवन जी लेंगे। ❑

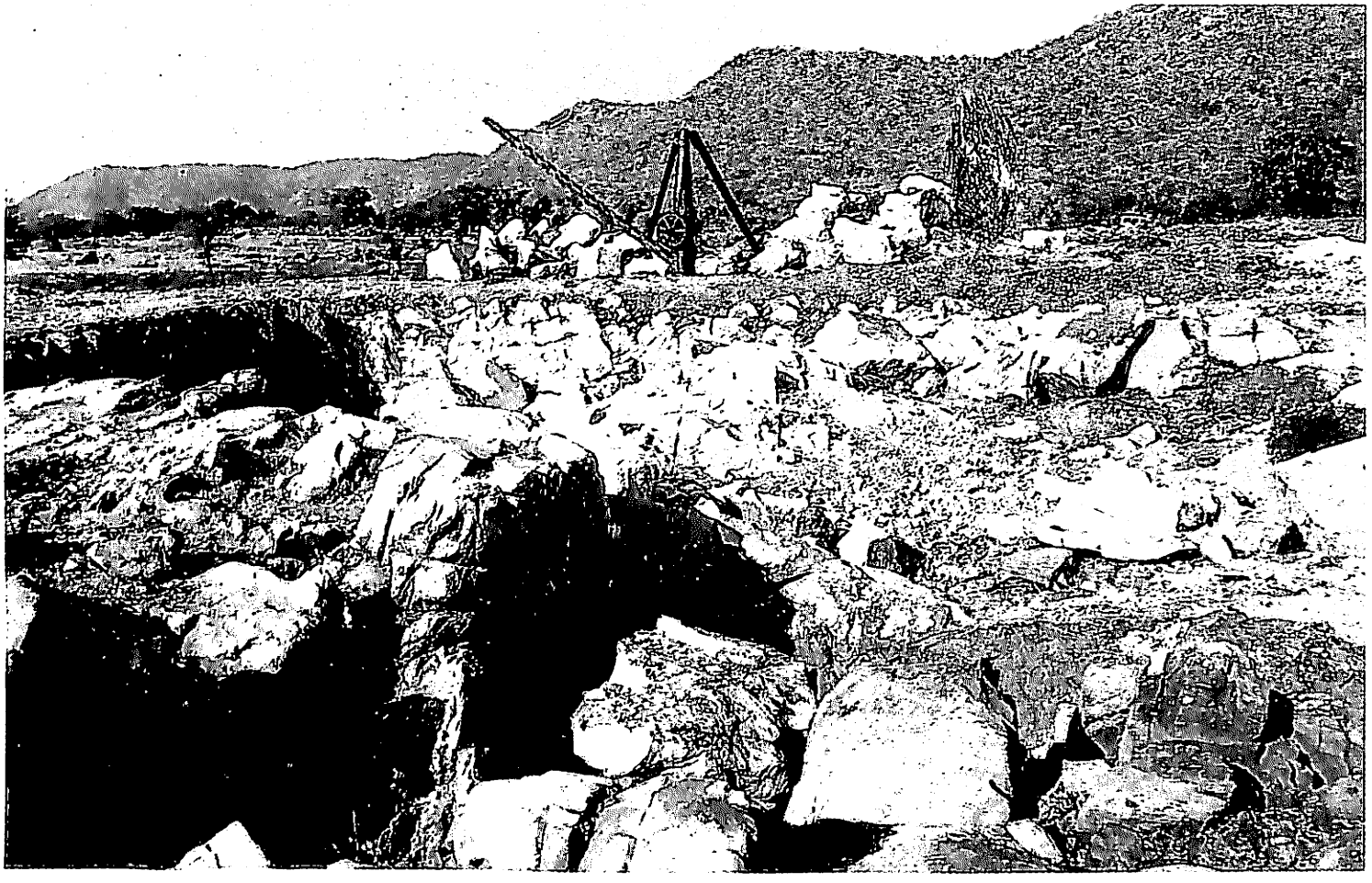

अरावली की जड़ें खोदती खदानें

2

अरावली के बाशिंदे मालिक से मजदूर होते लोग

राजस्थान के 16 जिलों में 43, 315 वर्ग किलोमीटर अरावली पर्वत शृंखला फैली हुई है, जिसका 21,384 वर्ग किलोमीटर अधिसूचित वन-क्षेत्र है। इस क्षेत्र में लगभग 20 हजार खनन पट्टे दिए जा चुके हैं। इसमें अधिकतर 1 हेक्टेयर भूमि पर खनन करने के पट्टे दिए गए हैं। इससे 10 गुना भूमि को मलबा डालकर, कटाव, सिल्टिंग आदि से अनुत्पादक भूमि में बदल दिया गया है। इस प्रकार राजस्थान में कुल 2 हजार वर्ग किलोमीटर भूमि पर खनन-कार्य चल रहा है। खान-विभाग के सचिव के अनुसार इस धन्धे में तीन लाख श्रमिक कार्यरत हैं। इस आंकड़े को सत्य भी मान लिया जाये, तो भी यह अवैधानिक तरीके से चल रहा धन्धा है। इसे ''रोजगार-दाता'' कहना उचित नहीं है, क्योंकि इस क्षेत्र में ही इससे भी कम खर्च करके पारिस्थितिकी खेती, उद्यानीकरण एवं वनीकरण करके स्थायी रोजगार दिया जा सकता है। इससे अधिक 'शुद्ध लाभ' कमाया जा सकता है।

खान-मालिकों का कहना है : खनन-कार्य राजस्थान के लिए आवश्यक है। यह बात मानी भी जाये तो भी यह आज जैसे चल रहा है, वह शुभ नहीं है। इस कार्य में लगे श्रमिक मौत से जूझ रहे हैं। सरिस्का में चल रही खानों के श्रमिकों के स्वास्थ्य का अध्ययन करने से पता चला है कि 3 वर्ष से अधिक काम करने वाले 37 प्रतिशत श्रमिकों को 'सिलिकोसिस' हो गया है। यह एक असाध्य रोग है। 3 वर्ष से कम काम करने वाले 29 प्रतिशत श्रमिकों को शरीरदर्द, 64 प्रतिशत श्रमिकों को खांसी, 18 प्रतिशत श्रमिकों को रात्रि में बुखार की शिकायत रहती है। ये जो कमाते हैं, उसका बड़ा हिस्सा तो इन्हें इलाज में ही खर्च करना पड़ता है। खान-मालिक इन्हें किसी भी प्रकार की स्वास्थ्य-सेवाएं उपलब्ध नहीं कराते। यहां के खान-मजदूरों का अपना कोई संगठन भी नहीं है। इनको संगठित करने एवं स्वास्थ्य-सेवाएं पहुंचाने वालों को भी खान-मालिक उस क्षेत्र में काम नहीं करने देते। यहां के श्रमिकों के लिए स्वास्थ्य-सेवाओं का कार्य करके संगठित करने का कार्य तरुण भारत संघ ने आरम्भ किया था। इस परियोजना के अधिकारी को खान-मालिकों ने अपने षड्यंत्र में शामिल करके भगा दिया।

सरिस्का बाघ परियोजना के अन्दर 9 वर्ग किलोमीटर वन भूमि पर चलने वाली 262 खानों को उच्चतम न्यायालय के आदेश से बन्द कर दिया गया है, लेकिन 208 खानें अभी भी चल रही हैं। इन खानों से 9 वर्ग किलोमीटर वन-क्षेत्र पूर्णतया अनुत्पादक हो चुका है, तथा 150 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र के वन्य जीव बुरी तरह प्रभावित

हो चुके हैं। खनन से पूर्व 1987 में यहां पर 44 बाघ थे। खनन के कारण आज सिर्फ 22 बाघ शेष रहे हैं।

इस क्षेत्र में चलने वाली खानों में 119 खानों का सर्वेक्षण किया गया तो चौंकाने वाले तथ्य सामने आए। 119 खानों में कुल 1994 श्रमिक हैं। इन में से 551 श्रमिक न्यूनतम वेतन से भी कम मजदूरी प्राप्त कर रहे हैं, जो कुल 29.25 प्रतिशत है। इनमें 94 बच्चे हैं, जिनमें से 54 स्थानीय हैं, तथा 40 बाहर से लाये हुए बच्चे हैं, जो कि बन्धुआ मजदूरों की जिन्दगी जी रहे हैं। औसतन एक परिवार से तीन व्यक्ति – 2 वयस्क एवं 1 बालक–मजदूर हैं। यहां पर 173 महिला श्रमिक काम कर रही हैं। ये मुख्यतया मलबा उठाने का काम करती हैं। यहां की खानों में औसतन 12 श्रमिक प्रति खान काम करते हैं। यहां की एक खान में सर्वाधिक 35 मजदूर काम पर मिले। कम से कम 5 मजदूर एक खान में काम कर रहे थे।

खानों में काम करने वाले सभी मजदूर असुरक्षित हैं, किसी भी खान में सुरक्षा के उपाय नहीं हैं। इस क्षेत्र में जब खनन नहीं था, तो यहां के लोगों का मुख्य धन्धा पशुपालन था, साथ में खेती भी करते थे। हर घर में गाय-भैंस का दूध एवं भर-पेट रोटी मिल जाती थी। लोग आपस में एक-दूसरे का सहयोग करते थे, मददगार रहते थे, गांव में छोटी-मोटी बीमारी का इलाज हो जाता था। बच्चे स्कूल में पढ़ने जाते थे, कपड़ा एवं उचित देखभाल के साथ मां का ममत्व सहज ही उपलब्ध था। इससे बच्चों का सहज एवं समग्र विकास होता रहता था।

ये अकाल जैसी प्राकृतिक विपदाओं में भी इसी क्षेत्र में रहते थे। यहां के पशुओं तथा मनुष्यों के भूखे मरने के कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं हैं, क्योंकि इस क्षेत्र में वनों का आधिक्य था, इसलिए स्वत: बहने वाले जलस्रोत भी इस क्षेत्र में बहुत अधिक थे। कुओं का जल स्तर भी ऊँचा था। यहां पर छोटी खेती थी। यहां की मिट्टी के अधिक उपजाऊ होने के कारण काफी अन्न पैदा होता था। ये लोग मानसरोवर एवं मंगलसर बांध से भरपूर सिंचाई करते थे। इस क्षेत्र में आम के बगीचों, सब्जी आदि की बहुतायत थी।

पिछले 4-5 वर्षों से ही इस क्षेत्र में डोलामाइट का खुला खनन प्रारम्भ हुआ। इससे पूर्व की तांबे की गहरी खान जरूर इस क्षेत्र में चल रही है। डोलामाइट हेतु खुले खनन के पट्टे लेने वाला तथा देने वाला एक ही वर्ग का होने के कारण आवेदन में गलत सूचनाएं देकर वन-भूमि पर खनन पट्टे प्राप्त कर लिये गये। इस प्रकार इस क्षेत्र में 470 अवैध खानें चालू हुई थीं। इन खानों से यहां के पशुओं को चरने का स्थान ही समाप्त हो गया तथा खानों का मलबा वर्षाजल के साथ बह कर खेती की जमीन पर जमा होने लगा, जिससे भूमि का कटाव एवं भराव आरम्भ हो गया। अधिकतर खेती की जमीन बर्बाद हो गई। इस प्रकार पशुपालन एवं खेती समाप्त होने से यहां के समृद्ध कृषक-परिवार धीरे-धीरे मजदूर बनने लगे। क्षेत्र के 7 गाँवों में, जिनकी आबादी लगभग 9 हजार होगी, 1900 परिवार रहते हैं। इन 1900 परिवारों में से 167 परिवार अब खनन-उद्योग पर आश्रित हैं। इन परिवारों से औसतन तीन व्यक्ति खनन-कार्य करते हैं। यह भी देखने में आया कि 35 वर्ष से अधिक उम्र का एक भी व्यक्ति खनन में काम नहीं कर रहा था।

विकास के नाम पर चलाये जा रहे खनन से इस क्षेत्र में कुछ पक्के मकान बन गये हैं। इनके अतिरिक्त खनन-उद्योग से न कोई चिकित्सालय बना है, न स्कूल खुला है, न ही पीने के पानी की कोई अतिरिक्त सुविधा उपलब्ध कराई गई है; किन्तु इस क्षेत्र में विद्युत-लाइन आ गयी, इसका लाभ भी बाद में खान-मालिकों ने उठाया। ट्रान्सफार्मर खनन क्षेत्र में लगने से इसका नियन्त्रण उन्हीं के हाथों में रहा। इस प्रकार यह बात साफ तौर से कही जा सकती है कि यहां पर चलने वाली खानों से इस क्षेत्र में कोई विकास कार्य नहीं हुआ।

यह बात जरूर है कि खनन के कारण इस क्षेत्र के बहुत से मजदूर व्यावसायिक दुर्घटना तथा खनन से पैदा होने वाली बीमारी के कारण मर चुके हैं, तथा बहुत से लोगों को विकलांग बना दिया गया है, बहुत सी महिलाएं बेसहारा हो चुकी हैं।

इस क्षेत्र के 497 स्थानीय श्रमिकों को रोजगार के लिए तरुण भारत संघ ने छोटे जोहड़, एनीकट एवं बांधों का निर्माण कार्य आरम्भ किया है। इसके साथ यहां की विकृत भूमि को सुधारने के लिए वैकल्पिक रोजगार की योजना बनाई है। इस क्षेत्र के खनन के बन्द होने से बेरोजगार हुए लोगों के लिए राजस्थान सरकार के पास 'हरित अरावली' के तहत 450 करोड़ रुपये उपलब्ध हैं। यदि सरकार गंभीरता से इन लोगों को रोजगार उपलब्ध करना चाहती है तो यह पहले 5 वर्षों में यहां की विकृत भूमि को सुधारने में रोजगार दे सकती है। उसके बाद यह भूमि स्थायी रूप से उत्पादन योग्य हो जायेगी, जिससे यहां पर पशुपालन एवं खेती करके यहां के श्रमिक अपनी जीविका प्राप्त कर सकते हैं। परिणामस्वरूप, यहां का टूटा हुआ प्राकृतिक चक्र पुन: जीवित हो जायेगा, तथा यहां के मूल मालिक कृषक अपने प्राकृतिक संसाधनों पर जीवित रहकर अपनी खोई हुई सामाजिक एवं सांस्कृतिक समृद्धि को पुन: प्राप्त कर सकते हैं। यदि ऐसा नहीं हुआ तो यहां के प्राकृतिक संसाधनों के मूल मालिक–कृषक एवं पशुपालक–खनन द्वारा शोषित होकर मजदूरों में बदलते जायेंगे। गरीबी मिटाने के नाम पर गरीबों को मिटाने का षड्यंत्र चलता रहेगा। ❑

3

राजस्थान के खान-मजदूर सिलिकोसिस में सिसकते व मौत के घेरों से घिरे

भारत में पांचवें स्थान पर रहने वाला राजस्थान कुल खनन- उत्पादन का 5.74 प्रतिशत राजस्व पैदा करता है। इसमें कुल छः लाख मजदूर सरकारी आंकड़ों के अनुसार, तथा उद्योगपति पचास लाख मजदूरों को खनन से रोजगार देने की बात करते हैं। अब लगातार बढ़ते मशीनीकरण से इस उद्योग में मजदूरों की संख्या घटकर आठ लाख के आस-पास ही रही है। खनन-उद्योग से जुड़े गांवों में अब केवल विधवा महिलाएं ही दिखाई देती हैं।

राजस्थान में मुख्यतः लिग्नाइट स्टोन, लाइमस्टोन, सीमेन्ट, सैन्डस्टोन, क्वार्ट्ज, साफ्ट स्टोन, जिप्सम, मार्बल, कोटा स्टोन, बोलोस्टोनाइट की खदानें हैं। इनमें सबसे अधिक क्वार्ट्ज, सीमेन्ट, लाइमस्टोन, सॉफ्ट स्टोन की खदानों में धूल के कणों से सिलिकोसिस, टी.बी. आदि से बीमार होकर मजदूर मरते हैं। व्यावसायिक दुर्घटनाओं में सबसे अधिक मार्बल व कॉपर की खदानों में मजदूर विकलांग होकर अपना जीवन तबाह करते हैं। खदान रूपी नाग दिन-दूना रात-चौगुना अपना फन फैलाता जा रहा है।

सरकार बढ़ते खनन से बहुत प्रसन्न है, क्योंकि इससे राजस्व बढ़ता है। इससे सरकार की प्रसिद्धि भी बढ़ती है। इसका बढ़ना सरकारी विकास का प्रतीक है। इससे फैलने वाली बीमारी, बिगड़ते पर्यावरण, लुटते संसाधन की अनदेखी करना सरकार का स्वभाव है। यदि इसकी क्षतिपूर्ति का हिसाब लगाया जाये तो जितना राजस्व राज्य को प्राप्त होता है या कुल शुद्ध उत्पादन माना जाता है, वह कुल संसाधनों की कीमत से कम है। या यूं कहा जा सकता है कि खदानों से जो पारिस्थितिकी-ह्रास होता है, उसे पुनः सुधारने में आय से अधिक खर्च होता है। मजदूरों की बीमारी की एवं मृत्यु की क्षतिपूर्ति तो सम्भव ही नहीं है।

अजमेर जिले की ब्यावर तहसील के खदान-मजदूरों के जीवन से जुड़े संलग्न तथ्य बताते हैं कि ब्यावर की फैक्टरियों व खदानों में काम करने वाला प्रत्येक मजदूर पांच वर्ष काम करने के बाद एक लाइलाज बीमारी से मर जाता है। पिछले एक वर्ष में 300 से अधिक मजदूर इस बीमारी से मरे हैं, जिनका कोई रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं है। यह सब जानकारी गांवों में जाने से प्राप्त हुई है। वैसे भी सरकार सदा

1 जनवरी, 1994 से 30 जून, 1994 के बीच खान-दुर्घटनाओं से प्रभावित मजदूरों का विवरण

क्र.सं.	खनन-क्षेत्र	दुर्घटनाएं	मरे	घायल	पुलिस केस	मुआवजा
1.	उदयपुर	31	11	16	1	-
2.	राजसमंद	23	8	18	1	-
3.	डूंगरपुर	12	4	23	-	-
4.	बांसवाड़ा	6	3	11	-	-
5.	चित्तौड़गढ़	13	7	16	-	-
6.	मकराना	98	82	37	8	निजी तौर पर
7.	जोधपुर	16	6	26	-	-
8.	अजमेर	3	2	6	-	-
9.	जयपुर	5	3	9	-	निजी तौर पर
10.	अलवर	14	4	13	-	निजी तौर पर
	योग	**215**	**130**	**175**	**10**	

उक्त घटनाओं की संख्या स्थिति दर्शाती है। अभी भी कम्पेनसेशन अधिनियम की कहीं पालना नहीं हो रही है। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम भी लागू नहीं हो रहा है। यह नीचे की तालिका से स्पष्ट होता है :

खान-मजदूरों को मिलने वाली दैनिक औसत मजदूरी

क्र.सं.	खनन-क्षेत्र	पुरुष मजदूर	महिला मजदूर	बाल मजदूर
1.	उदयपुर	30 रु.	25 रु.	13.50 रु.
2.	राजसमंद	30 रु.	22 रु.	13.00 रु.
3.	डूंगरपुर	28 रु.	20 रु.	12.00 रु.
4.	बांसवाड़ा	29 रु.	20 रु.	12.00 रु.
5.	मकराना	40 रु.	25 रु.	15.00 रु.
6.	जोधपुर	50 रु.	30 रु.	20.00 रु.
7.	अजमेर	30 रु.	25 रु.	15.00 रु.
8.	जयपुर	35 रु.	25 रु.	13.50 रु.
9.	जमुवारामगढ़	25 रु.	18 रु.	11.00 रु.
10.	अलवर	45 रु.	28 रु.	18.00 रु.
11.	चित्तौड़गढ़	35 रु.	25 रु.	15.00 रु.
12.	बाड़मेर	24 रु.	16 रु.	16.00 रु.

मौत को नकारती है। मौत की कभी कोई शिनाख्त नहीं होती है। जब भी कोई अकाल या भूख से मरे तो सरकार तुरंत इसका खंडन करती है। लाश दिखा दे कोई तो कहती है ऐसे नहीं मरा, वैसे मरा है।

सिलिकोसिस तो वैसे भी एक ऐसी बीमारी रही है कि सरकार सदा इसकी उपस्थिति को ही अस्वीकार करती है। सिलिकोसिस के तमाम मजदूरों का इलाज टी.बी. बता कर किया जाता है। यह इलाज सफल नहीं होता और मजदूर मर जाते हैं। तब भी वे टी.बी. से ही मरे होते हैं। कैसी विडंबना है कि कोई मरकर भी विश्वास नहीं दिला सकता।

जमुवारामगढ़- वन्य जीव अभयारण्य में चल रही खदान में अभी 4.4.96 को खान के ढहने से एक साथ 3 व्यक्ति दब कर मर गये, खान-मालिक खान छोड़कर भाग गया। छोटी-सी खदान थी, जिसमें से मजदूरों की लाश तीन दिन के बाद जिला प्रशासन निकाल पाया। खदान अब कोई दूसरा आकर चला लेगा। उन तीन परिवारों की बरबादी के बाद उनकी विधवाओं को कोई एक पैसा भी देने वाला नहीं है। आज तक उनके परिवारों को क्षतिपूर्ति के लिए किसी ने नहीं सोचा। प्रतिदिन मौत के खतरे से घिरे इन मजदूरों का कभी कोई बीमा नहीं होता। बीमा वैसे भी तो व्यापार ही है। शुद्ध बाजार है इसकी व्यवस्था। जो पैसा दे सके, वही बीमे का हकदार है। इसका कोई अर्थ नहीं हमारे यहां कि वह कूवत से सोना खोद लाता है या हीरा। अरावली के खान-मजदूर भी इसी बाजारू व्यवस्था की उपेक्षा के शिकार हैं।

इसी प्रकार सरिस्का वन क्षेत्र में चल रही **नीझरा की ढाणी** की खान में एक आदमी फरवरी में दुर्घटना से मरा था। दस दिन मजदूरों ने खान बन्द रखी, तब मात्र 50 हजार रु. उस मजदूर की विधवा को मिले। जिस मजदूर ने पांच वर्ष खदानों में काम कर लिया, समझो बस उसे ऐसी कोई बीमारी लग गई जो मजदूर को चैन से नहीं जीने देती है। बीमारों को दवाई देने की यहां कोई व्यवस्था नहीं है। दुर्घटना में फर्स्ट-एड के नाम पर कोई पट्टी तक नहीं मिलती। खदानों में काम करते हुए बीमारी से मरने वालों को कोई कम्पेनसेशन-जैसी सुविधा मिलना तो असम्भव है ही, मरने वाले मजदूरों के बारे में कोई सोचने वाला तक नहीं है। उनके परिवार में कोई बीमार हो जाये, तो उसे दवाई तक नहीं मिलती।

केवल ऐसा नहीं है कि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की पालना नहीं हो रही है, बल्कि समान काम के लिए जातीय आधार पर मजदूरी मिलती है। यहां पर आदिवासी को 28, अनुसूचित जाति 32, पिछड़ी जाति को 35, जाट गुर्जर को 40 तथा राजपूत को 45 रु. मिलते हैं।

खदानों का पर्यावरण जैसा रहता है, हम सब जानते हैं। पानी, हवा, भोजन सब कुछ प्रदूषित होता है। इसकी जांच की बात करने वालों को सीधे मौत के घाट उतारने की धमकी मिल जाती है। खदानों से भू-जल प्रदूषित होता है, यह कहने मात्र से **हनुमान मीणा** को अपना सिर फुड़वाना पड़ा था।

खदानों में काम करने वाले मजदूर अपनी इच्छानुरूप मन से खुलकर कोई बात नहीं कर सकते। ऐसा करने वाले **बोद्धन गुर्जर** को पूरे क्षेत्र की खदानों में काम नहीं मिला। खान-मालिकों के निहित स्वार्थ पर आधारित बहुत मजबूत संगठन हैं।

मजदूरों को संगठित करने वालों में से कोई मजदूर खदानों में काम नहीं कर सकता, गांव तक से सूचना खान-मालिकों को पहुंच जाती है। **समरा की खदान** में मजदूरों को संगठित करने की **छोटेलाल मीणा** ने प्रक्रिया शुरू की थी। खान-मालिकों द्वारा तुरन्त धमकियों का दौर शुरू हुआ तथा उसे गांव छोड़ने के लिए मजबूर किया गया। ऐसे हालात में मजदूर-हित के कुछ लुंज-पुंज कानूनों को भी लागू करवाना आज के हालात में खदानों में तो बहुत ही कठिन है। इसीलिए उदयपुर में 6 माह में हुई खान दुर्घटनाओं में किसी मजदूर को क्षतिपूर्ति नहीं हुई।

जब न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की खदान-क्षेत्रों में कहीं पालना नहीं हो रही है, तो क्षतिपूर्ति अधिनियम लागू करवाना तो और भी कठिन है।

पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी सन्तुलन बनाने के लिए खान-मालिकों से तो कभी कोई उम्मीद करना ही व्यर्थ है।

ऐसे विपरीत हालात में भी पूर्वी उत्तरी राजस्थान की कुछ संस्थाओं ने मजदूर हकदारी के लिए काम करने का संकल्प लिया है। इसकी पहल जयपुर में एक शिविर आयोजित करके की जायेगी। इस शिविर में भागीदार होकर खनन-मजदूरों की स्थिति सुधारने के लिए हमारे मजदूर-हकदारी संघर्ष में मार्गदर्शन, मदद, साथ और व्यापक-सहयोग की हम सदा सबसे अपेक्षा करेंगे। ❑

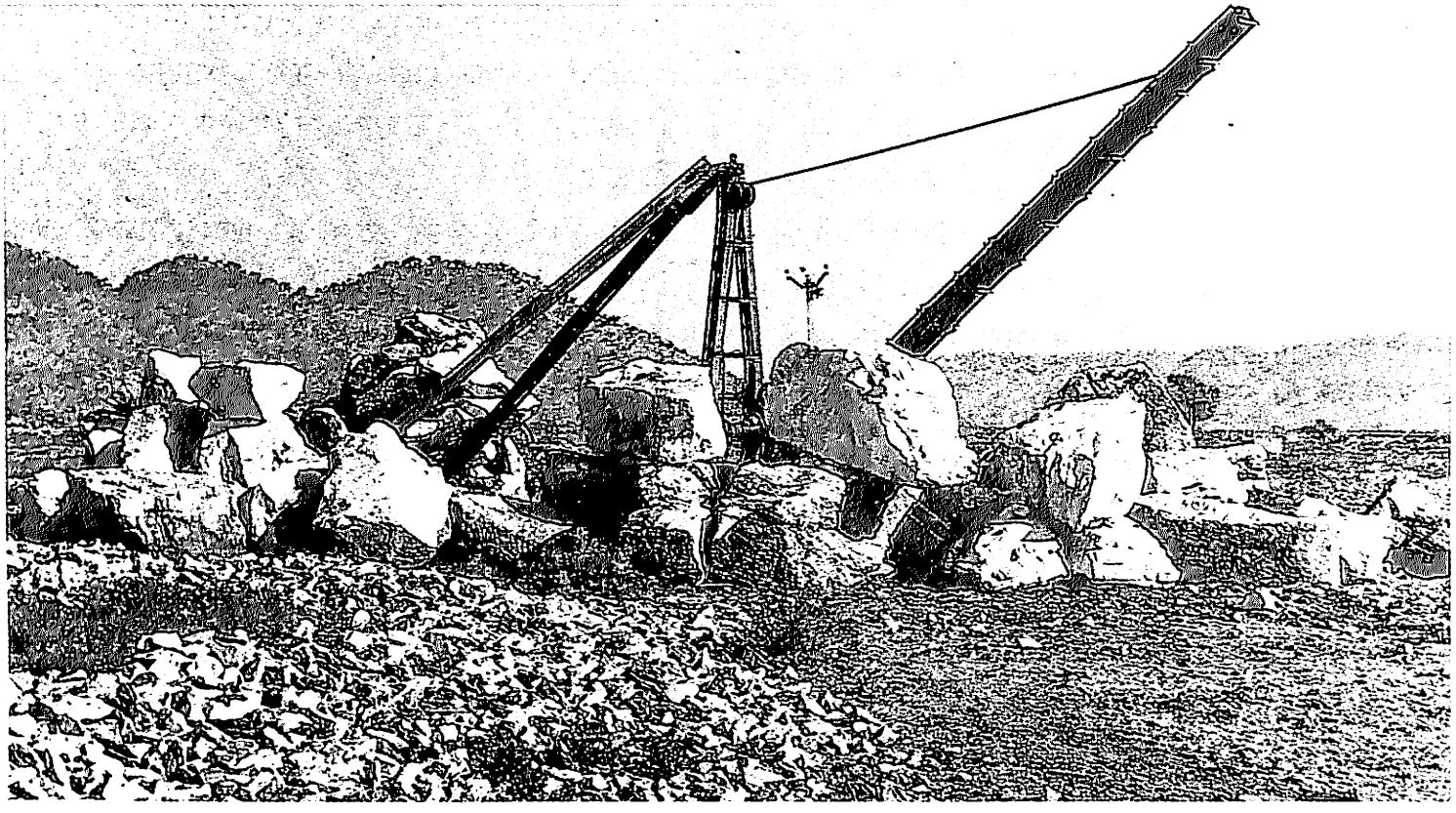

खदानों से बदहाल और हताश जीवन

4

अलवर की खानों में मजदूरों की बेबसी

आजकल तिजारा में किसानों की दोफसली खेती की जमीन शराब -कारखानों तथा अन्य उद्योगों के लिए अवाप्त की जा रही है। साथ ही साथ, गांव में लगने वाले शराब के कारखानों तथा बहरोड़ के आसपास बन रहे 8 बीअर के कारखानों में उत्पादन व बिक्री बढ़ाने की अलवर की नयी योजना है। रोजी-रोटी के लिए, जंगल व जंगली जीवों के घरों, लोगों की आबादियों एवं उनके आसपास दी जा रही नई खदानों को लीज उच्चतम न्यायालय के आदेश तथा पर्यावरण मंत्रालय की अधिसूचना की धज्जियां उड़ा रही हैं। अलवर जिले की आय के ये तीन जरिये माने जा रहे हैं। खनन, शराब इन सबसे सरकार को मिलने वाला बिक्री-कर सरकार की आय का सबसे बड़ा जरिया है लेकिन इससे व्यापारी वर्ग अर्थात् सभ्य और ऊंचे समाज पर इसका बोझ पड़ता है। इसलिए यह तथाकथित उच्च वर्ग बिक्री-कर को समाप्त करने की मांग वर्षों से कर रहा है।

शराब का उत्पादन व बिक्री बढ़ाने से उच्च वर्ग को ही पूरा लाभ व आराम मिलता है, इसलिए अलवर जिले में ही राज्य का सबसे अधिक शराब व बीअर उत्पादन होगा। इस समय शराब का उत्पादन व बिक्री बढ़ाकर ही यहां रामराज्य का स्वप्न देखा जा रहा है। अलवर में रामराज्य लाने के लिए केडिया जैसे साहूकारों को सादर आमंत्रित कर लिया गया है। ऐसे ही अन्य साहूकारों से सम्पर्क करने का दौर इस चुनाव में चल रहा है। शराब बनाने के लिए दूसरे जो तत्त्व चाहिए वे सब यहीं पर तैयार किये जायेंगे। प्रदूषण के नाम पर दिल्ली व आसपास के अन्य राज्यों में बन्द हुई इकाइयों को यहां बुलाया जा रहा है।

खनन को अलवर की आय का सबसे बड़ा साधन माना जाता है। इसकी आम भूमिका इसलिए है कि यहां निकलने वाला डोलामाइट, मकराना के मारबल के नाम पर बेचा जा सके। यह बात अलग है कि इस धोखाधड़ी के व्यापार से कुछ ही दिनों में इस नये मारबल का असली रूप सामने आने पर अलवर की बदनामी होगी। लेकिन यह खनन-मजदूरों की रोजी-रोटी से जुड़ा सवाल होने का दावा करता है, जबकि इसके उत्पादन व बिक्री बढ़ने का पूरा लाभ एक छोटे से उच्च वर्ग को ही मिलता है। मजदूर हाड़-तोड़ मेहनत

करने के बावजूद नारकीय जीवन जी रहे हैं। खदानों में किसी प्रकार की दुर्घटना की स्थिति में उनके इलाज व मुआवजे की व्यवस्था नहीं है। इन्हें स्थायी नियुक्ति नहीं मिलती, इसलिए दुर्घटना होने पर खान-मालिक अपनी जिम्मेदारी से बच जाता है। महिला-मजदूरों के साथ ठेकेदार और उनके साथी जो बर्ताव करते हैं, वह निहायत ही शर्म की बात है।

अलवर से 10-15 हजार मजदूर खनन और उससे जुड़े उद्योगों में लगे होने की बात कुछ खान-मालिकों की तरफ से की जाती है। हालांकि सरकारी आंकड़ों में इनकी संख्या लगभग 2 हजार ही सामने आती है; लेकिन सरकारी आंकड़े वास्तविक संख्या पर आधारित नहीं हैं। खान-मालिक, श्रम-कानूनों व अन्य पाबन्दियों से बचने के लिए अपने यहां श्रमिकों की संख्या कम बताते हैं, वे अपने रजिस्टरों में वास्तविक श्रमिकों के नाम दर्ज नहीं करते और नाम बदलते रहते हैं, ताकि कोई मजदूर स्थायी नियुक्ति का दावा नहीं कर सके।

अलवर में लगभग आधे से कुछ कम 10 से 12 साल के बच्चे काम करते हैं जिन्हें 12 से 18 रु. रोज मजदूरी दी जाती है। कई बार इसमें से भी ठेकेदार मजदूरी काट लेता है या मजदूरी देने से मना करता है। महिला-मजदूरों की हालत खनन-उद्योग में बहुत खराब है। उन्हें दिहाड़ी के हिसाब से 20 से 25 रु. मजदूरी मिलती है। इसे प्राप्त करने के लिए भी उन्हें ठेकेदार के दबाव में रहना पड़ता है। कई बार तो ठेकेदार खान-मालिक से पैसे उठा लेता है और महिला-मजदूरों को भुगतान नहीं करता, समान काम के बाद भी यहां महिलाओं को समान मजदूरी नहीं मिलती, पुरुषों की तुलना में महिलाओं को कम मजदूरी मिलती है। अलवर जिले में जातीय आधार पर भी मजदूरी में भेदभाव किया जाता है, जिस काम के लिए रैगर, बलाई मजदूर को 30 रु. दिये जाते हैं, उसी काम के लिए मीणा को 35, गुर्जर को 40 और राजपूत को 45 तक दिये जाते हैं। कुछ खदानों पर इस जातिगत भेदभाव का कारण समझने पर पता चला है कि जिन लोगों की सामाजिक पकड़ व पहुंच है, उन्हें ज्यादा मजदूरी मिलती है।

खदानों में 40 वर्ष से अधिक उम्र के मजदूर काम पर नहीं मिलते क्योंकि खान-मालिक उन्हें बेकार समझता है। खानों में 10 से 35 साल के लोग ही मजदूरी कर सकते हैं ताकि उनसे अधिकाधिक काम लिया जा सके। यह देखने में आया है कि जो मजदूर लगातार 5 साल तक खान में काम कर चुका है, वह व्यक्ति हीन-सा दिखाई देता है, या किसी बीमारी का शिकार–खासकर फेफड़े-संबंधित बीमारी का। अलवर जिले में पिछले 6 महीनों में लगभग 40 दुर्घटनायें हुई हैं जिनमें 22 लोग मरे हैं। मरने वालों में बच्चे और महिलाएं भी शामिल हैं। इस महीने **समरा** गांव के तीन युवक एक ही दिन खान में दब गये। तीन दिन बाद उनकी लाशें निकाली गई, मरने वालों को अभी तक समुचित मुआवजा नहीं दिया गया, थोड़ा बहुत ले-देकर मामले दबा दिये गये।

खनन-मजदूर असंगठित हैं, उनकी अपनी कोई आवाज नहीं है, जबकि खान-दुर्घटनाओं में खान-मालिक ही दोषी होता है; क्योंकि वह कम समय में अधिक पैसा कमाने के लिए अनियन्त्रित व अवैधानिक तरीकों से खनन करवाता है।

हमारे कार्यकर्ता जब खानों पर दुर्घटनाओं की जानकारी लेने तथा मजदूरों के साथ बातचीत करने पहुंचे तो वहां ठेकेदारों ने उनके साथ दुर्व्यवहार किया। ऐसी कई घटनाएं हैं जिनकी खबरें अखबारों में छपी हैं, पर पुलिस, श्रम-विभाग या खान-विभाग को पता नहीं चला। यदि पहले अखबार में पढ़ने के बाद ही पता चला तो भी कार्यवाही ही क्या हुई, इसका भी जवाब नहीं। जिले की सब खदानें अवैधानिक, अनियंत्रित खनन के चलते असुरक्षित हैं। इनमें कभी भी दुर्घटना होने का भय बना रहता है लेकिन इस ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। खदानों में चिकित्सा-सुविधा भी उपलब्ध नहीं है। टी.बी., कैंसर, फेफड़े-संबंधित बीमारियां, मेघा एठस, सिलिकोसिस तथा अन्य कई प्रकार की जानलेवा बीमारियों से यहां के मजदूर पीड़ित हैं। इनके स्वास्थ्य-परीक्षण की जरूरत किसी खान-मालिक ने आज तक तो समझी नहीं।

खनन-क्षेत्रों के आसपास आवश्यक मानवीय सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। रहने के लिए खुली जगह या पांच फुट ऊंचे पत्थर के खंभों पर लोहे की टीन डालकर या कपड़ा-छप्पर बनाये हुए हैं। इनके नीचे गर्मी या सर्दी में रहने वाला हमेशा अपनी मौत को बुलाता रहता है। कई जगह तो ऐसे भी छप्पर दिखाई दिये, जिनमें लोगों को बैठे-बैठे

अन्दर घुसना और निकलना पड़ता है। इनके अन्दर की लम्बाई व चौड़ाई भी पर्याप्त नहीं है। जो रोजगार की तलाश में अपने घर छोड़कर खदानों में पहुंचे वे किसी न किसी बीमारी को लेकर पांच वर्ष बाद वापस अपने घर पहुंच गये। औरतें अपनी अस्मत लुटाने को मजबूर हुई हैं , और बच्चे भविष्य की कल्पना भूलकर आज की भूख मिटाने में लगे हैं। खान-मालिकों के संगठन राज्य सरकार एवं केन्द्र की पर्यावरण-अधिसूचनाओं के खिलाफ लामबंद होकर खड़े हो गये, और लाखों मजदूरों की रोजी-रोटी समाप्त होने का गीत गाते रहे। अपने स्वार्थ के लिए खान-मालिकों ने मजदूरों के हित की दुहाई देने के लिए कुछ वर्ष पूर्व अलवर में रैलियां निकालीं, ऐसी हालत में हलफनामे पेश किये, लेकिन लगता है कि अलवर की खानों में हो रहा शोषण तथा महिलाओं व बच्चों का आर्तनाद किसी को सुनाई नहीं देता।

आज भी अलवर के विकास के नाम पर खानों के नये पट्टों की मांग, ज्यादा से ज्यादा शराब-कारखानों के लाइसेन्स और बिक्रीकर की माफी अलवर में जोरों से है। इसके लिए अलवर जिले से राज्य सरकार में बने मंत्रियों ने केवल उद्योगपतियों के साथ ही सुर मिलाया। मंत्री जी अपनी मर्यादाओं से बाहर जाकर भी उद्योगपतियों के हित में काम जारी रखे हुए हैं।

अलवर में खान-मजदूरों के लिए मंत्री जी क्यों कुछ सोचते, जबकि खान-मालिक भी एक वोट देता है, और मजदूर भी एक वोट देता है। मंत्री के लिए तो दोनों की हैसियत बराबर है। लेकिन उद्योगपति मंत्रियों के लिए और दूसरे जो कार्य कर सकते हैं, वह मजदूर के बस की बात नहीं है। तो क्या अलवर के खान-मजदूर इसी प्रकार बेबस बने रहेंगे, खान-मालिकों के इशारों पर चलते रहेंगे, या कभी अपने स्वास्थ्य एवं भविष्य के बारे में भी विचार करेंगे ? अलवर के खान-मजदूरों को अपने हालात सुधारने, भविष्य को खुशहाल बनाने के लिए संगठित होना पड़ेगा, क्षणिक स्वार्थ को त्यागना पड़ेगा, भविष्य को सुखी व समृद्ध बनाने के लिए काम के हालात बदलने होंगे, तभी खान-मजदूरों की हालत सुधरेगी। इस काम की पहल करने के लिए जगह-जगह खान-मजदूर चेतना शिविरों की शृंखला की जरूरत है। अभी खान-मजदूरों के लिए जो कानून बना है, केवल वह ही लागू हो जाये, तो भी मजदूरों के हालात सुधर सकेंगे। खनन-कानूनों को लागू करने हेतु खान-मजदूर-हकदारी-अभियान चालू किया गया है। सब मजदूर इससे जुड़ें। ❑

तिलवाड़ के ग्रामवासियों को तरुण भारत संघ का साथ : अरावली के उजाड़ को रोकने का लोक संकल्प

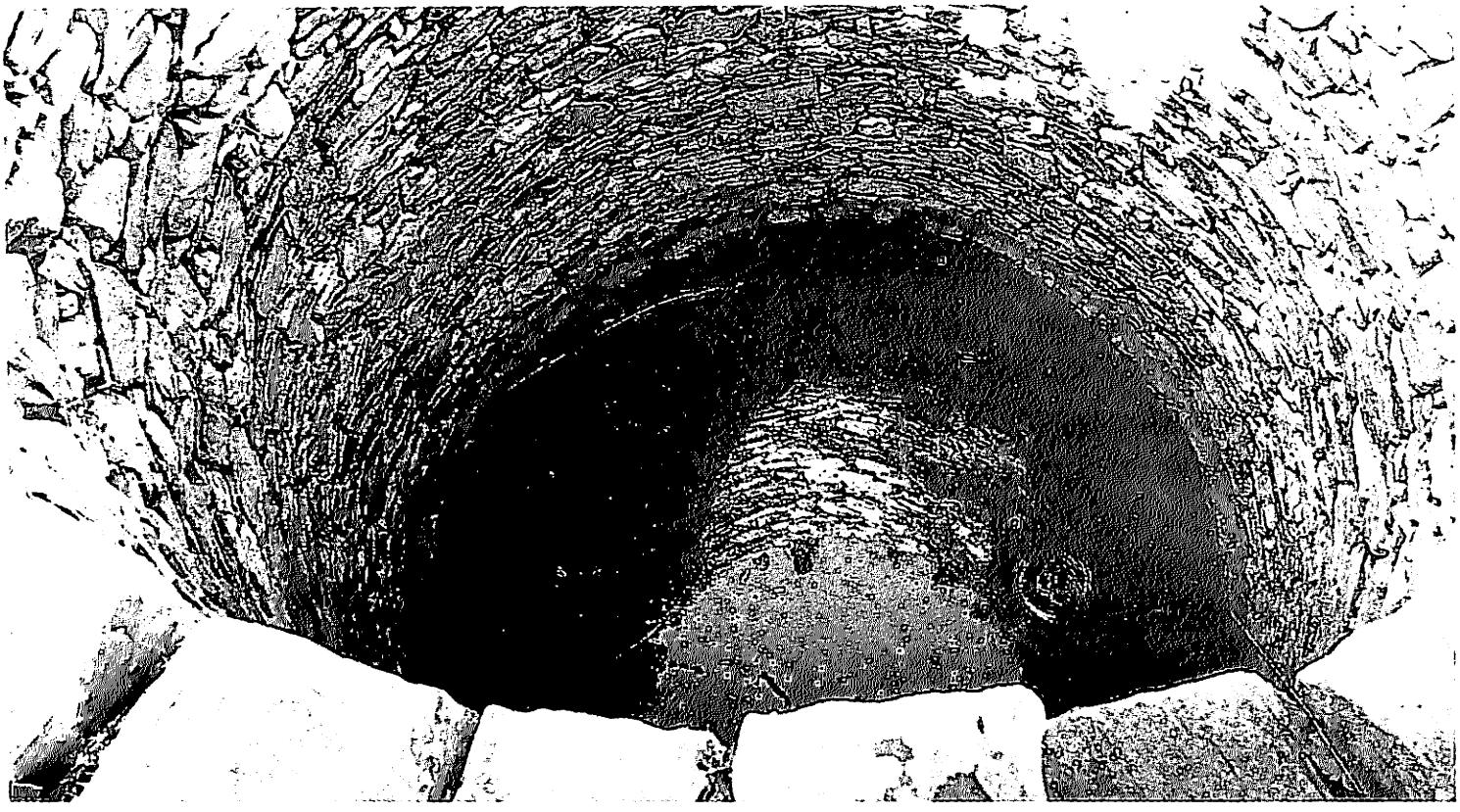

पानी पाताल जा पहुँचा : पानी की तलाश में व्यस्त जन-जीवन

5

बाड़ी और बसेड़ी में पत्थर-घिसाई के साथ पिसते लोग

धौलपुर में खनन का काम पुराना है। मेघराम मीणा (35) झींगापुर कहते हैं कि यहां पर खनन का काम शक्तिसिंह जी ने 40 वर्ष पहले शुरू कराया था। शक्तिसिंह इस क्षेत्र में खनने के लिए आये थे, और फिर यह काम उनके परिवार ने जारी रखा। पहले तो पूरे क्षेत्र के नदी-पहाड़ से हम एक पत्थर भी ले आये तो, उनके मुंशी हमसे उसका पैसा वसूल लेते। अब पिछले एक-डेढ़ साल से उनकी वसूली बन्द हो गई है।

इस गांव के एक दूसरे व्यक्ति रोशन (35) कहते हैं कि मैं शोबक क्षेत्र की 4-नम्बर खान में काम करता हूँ। तीस-चालीस हजार कर्जा मेरे ऊपर है और मैं बीमार हूँ। अब मैं काम नहीं कर सकता। 5- 6 साल खान में काम किया था। अब काम करने लायक नहीं रहा हूँ। 14 महीने से इलाज चल रहा है। मुझे तो डर लग रहा है कि जैसे खान में काम करते-करते मेरे ही गांव का सुग्रीव मर गया, कहीं मेरा भी वह ही हाल न हो जाये, मेरे बालकों का कौन धणी-धोरी होगा। यह कहकर वह रोने लगा। यहीं का नीमू कहता है कि मुझे काम करते फेफड़ों की बीमारी हो गई। मैंने इलाज में 14 हजार खर्च कर दिये, अब मैं खान में काम नहीं कर सकता।

सुरमा मीणा कहता है कि 200 फुट एक ट्रक पक्का माल तैयार कर देने के बदले 2000 रु. मिलते हैं। साल भर में 4 ट्रक माल तैयार करता हूँ। इस बार मैंने 10 हजार रु. पेशगी लिये हैं। उनमें ये पूरे नहीं हो सके तो मालिक के लोग पकड़ ले जायेंगे, और उनके पैसे नहीं उतारे तो मार-पीट करेंगे। हमारे पास पैसे नहीं होते तो किसी दूसरे को खड़ा करके तुरन्त पैसे उतरवाने पड़ते हैं। नहीं तो खान वाले छोड़ते नहीं। एक बार चैनपुरा गांव के एक आदमी ने खान-मालिकों के पैसे नहीं दिये तो उसे हमारे गाँव के मीणों से पकड़वाकर हमारे गांव में मंगा लिया था; और जब तक उसके रिश्तेदारों ने उसके पैसे ब्याज सहित खान-मालिकों को जमा नहीं किये तब तक उसे नहीं छोड़ा। उसके घरवालों ने पुलिस को भी सूचना कर दी थी। फिर भी पुलिस की हिम्मत नहीं हुई कि, वह आकर उसे छुड़ा दे। हमारे इस इलाके में तो खान-मालिकों का ही राज चलता है। हमारे दाता और राजा तो वो ही हैं।

सोनोरा गांव के पास उत्तर-पश्चिम में एक बहुत बड़ी खान चल रही है जिसमें टडवास व सोनोरा के 30-40 खान-मजदूर काम करते हैं। इन खान-मजदूरों के परिवारों का हाल देखते बनता है, और खान का पड़ा हुआ मलबा ऐसा दिखाई देता है जैसे शरीर पर हुए घाव के चारों तरफ लगा हुआ खून व मवाद का ढेर हो।

बाड़ी से निकलकर बसेड़ी की तरफ जाते हुए, बिना साइनबोर्ड

के पत्थर-घिसाई तथा चिराई की मशीन पर पत्थरों को घिसते व काटते देखकर ऐसा लगा जैसे ये काम करने वाले लोग बहुत-कुछ कमाते होंगे। पर देखने में आया कि ऐसा नहीं है। इनके मालिक कोई और हैं और इन पर काम करने वाले मजदूर कोई और हैं। ये मजदूर तो पत्थरों की चिराई कर रहे हैं, उन्हें पत्थर कटाई के कारण अपने स्वास्थ्य के साथ बहुत कुछ खोना पड़ता है; और जो पत्थर की घिसाई पर लगे थे, उन्हें खुद को भी पत्थर की तरह से पत्थर को लगाने, हटाने, बदलने, घिसाई, कटाई करने के लिए दबाव डालने आदि के काम में बहुत मेहनत करनी पड़ती है। यह मेहनत इन्हें बीमार तो करती ही है, साथ-साथ इन्हें घाटे में लाकर कर्जदार भी कर देती है।

बाड़ी के श्री सुलतानसिंह का कहना है कि पत्थरों का काम केवल पैसे वालों का खेल है। इससे पैसे वालों के एक के चार बनते हैं, लेकिन गरीब मजदूर की जिन्दगी तबाह होती रहती है। जो मजदूर एक बार पत्थर की घिसाई के काम में फंस गया, फिर वह सारी जिन्दगी फंसा रहता है। इस काम में एक और बात है कि पैसे वाले लोग पैसे गुणात्मक रूप में बढ़ाने हेतु शराब का चलन मजदूरों के बीच बढ़ाने का काम कर रहे हैं। खानों व मशीनों पर काम करने वाले मजदूरों को शराब की लत लगा रखी है। वे जो कुछ कमाते हैं, उसे शराब के जरिये मंगा लेते हैं। घिसाई की मशीन पर ज्यादा घण्टे जगाने के लिए भी कभी-कभी मजदूरों को शराब पिलाई जाती है। इन घिसाई की मशीनों पर काम करने वाले मजदूरों को पीस-रेट के हिसाब से मजदूरी दी जाती है जो कि न्यूनतम मजदूरी से बहुत कम है। मजदूरी भले ही कम हो लेकिन वह जानलेवा नहीं हो तो अच्छा है, क्योंकि व्यक्ति कम खाकर और अच्छा काम अधिक करके भी सुखी व सम्पन्न रह सकता है। लेकिन बाड़ी-बसेड़ी की खानों में पत्थर की चिराई-घिसाई की मशीनों में तो काम करने वाले मजदूरों के अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो गया है। इस तरह के खतरों से बचने के लिए हमारे समाज में जागरूकता की जरूरत है। जब तक पैसे वाले लोग अपने बंगलों को चमकाने के लिए उनकी दीवालों पर 'करौली व बाडी-बसेडी' की खानों से निकला हुआ तथा इन मशीनों पर घिसकर, चमकदार बनाकर, कटा हुआ, यह पत्थर लगाते रहेंगे, तब तक ये बाड़ी-बसेड़ी की मशीनें लोगों को बीमार करके मजदूरों की विधवा औरतों की संख्या बढ़ाती रहेंगी, कुछ लोगों को जीवन व मरण से जूझने हेतु मजबूर करती रहेंगी।

अत: यह जो बाड़ी-बसेड़ी की मशीनों पर काम करने वाले मजदूरों का सवाल है, इसका समाधान केवल मजदूर के लिए कुछ मजदूरी बढ़ाने या मशीनों में फेरबदल करके आरामदायक बनाने या बीमार को केवल खान-मालिकों की तरफ से कुछ दवाइयां मुहैया करवा देने से नहीं होगा, बल्कि हमारे समाज को अपनी दृष्टि व जीवन-पद्धति बदलनी पड़ेगी।

आज हमारे समाज में प्रकृति को समझने और उसकी गति को जानने तथा इसकी सुन्दरता व छटा को बना देखने वालों की संख्या बहुत कम होती जा रही है। एक जमाना था, जब हमारा समाज पेड़ों-पत्तियों, पक्षियों से बात करता था। उनकी संवेदनाओं से संवेदित होता था। फूल व पत्तियों को स्पर्श करके उनसे आनन्दित होता था। लेकिन आज हमारा सब कुछ इस प्रकार समाप्त हो गया है कि अब तो मानव मानव से भी बात नहीं करता, बल्कि मानव के बने हुए वर्ग ही आपस में एक-दूसरे के साथ सीमित दायरों में निहित स्वार्थ की बातें करते हैं।

मजदूर ही मजदूर की चिन्ता करता है। खान-मालिक खान-मालिकों की चिन्ता कर सकता है। यह चिन्तन व विचार बढ़ रहा है, जबकि ये वर्ग अपने ही वर्ग के एक-दूसरे का हित भी नहीं साधते। भाई-बहन, पति-पत्नी तक अलग होते जा रहे हैं। फिर भला वर्गहित की बात भी कैसे सत्य होगी!

वर्गहित एवं वर्गसंघर्ष की बात ही अब अपना अर्थ खो रही है। आज तो जरूरत इस बात की है कि हम प्रकृति को समझें तथा उसके साथ अपने जैसा व्यवहार करें। प्रकृतिप्रेमियों, ऋषियों द्वारा बताये गये रास्ते को पकड़ें। पहले अहसास करें और मानव, मजदूर, जंगल, जीवों की पीड़ा को कुछ करने की शुरूआत करें। इसी के साथ धरती, पेड़, पहाड़, नदियों को जीवनदायिनी मानकर इनके साथ भी ऐसा ही सम्मान व व्यवहार करें जैसा हम अपने साथ चाहते हैं।

यदि हम प्रकृति के चक्र को समझ गये तो फिर हमें इस बात का भी आभास हो जायेगा कि दुनिया में कहीं भी छोटी-सी घटना गरीबी-अमीरी को देखे बिना सब को प्रभावित करेगी, इस प्रकार दु:ख-सुख में सबका साझा है।

प्रकृति के किसी हिस्से के साथ भी हिंसा होगी तो उसका असर कम-ज्यादा सब पर पड़ेगा, इसलिए कोई एक व्यक्ति हजार लोगों का जीवन कष्टमय बनाकर सुखी नहीं रह सकता। अत: करौली, बाड़ी, बसेड़ी में चलाया जा रहा खनन-उद्योग अभी ऐसा ही चल रहा है। यह उद्योग रोजी-रोटी देने के नाम पर इसमें काम करने वाले लोगों को ही पत्थर के साथ पीस रहा है। यह अपराध व हिंसा तुरन्त रुकनी चाहिए।

जिन्हें चमकदार घिसा हुआ पत्थर चाहिए, वे स्वयं अपने हाथों से पत्थर तैयार करें। मूक मजदूरों से घिसा हुआ पत्थर लगाने वालों को भी कभी मूक बना सकता है; इसलिए समझदार लोग इस पाप से बचें। यह पत्थर घिसाई, तराशी का काम हमारे यहां केवल मंदिरों तक ही मर्यादित करना होगा। ❑

6

करौली में लाल पत्थर की खदानों में सफेद होते मजदूर

करौली अरावली पर्वतमालाओं के दक्षिण-पूर्वी क्षेत्र में स्थित है। आजादी से पहले यह एक स्वतन्त्र राज्य था। तब इस क्षेत्र में गिनी-चुनी एक-दो खानें थीं जिनका पत्थर लालकिला, फतेहपुर-सीकरी व आगरे के किले में भी लगा है। आज यहां हजारों की संख्या में खुली खदानें चल रही हैं। इनको चलवाने वाले चन्द एक-दो परिवार मुख्य हैं जो लीज लेकर फिर गांव के गरीब लोगों को प्रति मजदूर 8000 से 15000 रु. पेशगी देकर काम करवाते हैं।

जिस मजदूर ने खान-मालिक से पेशगी ले ली फिर वह कभी दूसरी जगह काम पर नहीं जा सकता। यदि 1 साल या 2 साल में भी उस पेशगी का पैसा नहीं भरा गया तो उस मजदूर को उसी खान में काम करने के लिए बाध्य होना पड़ता है, तथा दी गई मूल रकम पर 2 रु. प्रति सैकड़े का ब्याज चढ़ता रहता है। इस प्रकार यदि किसी मजदूर ने पेशगी ली और वह बीमार हो गया या उसको दिये गये क्षेत्र में पत्थर अच्छा नहीं निकला तो ऐसे मजदूर भी इस क्षेत्र में मौजूद हैं जिन्होंने एक बार पेशगी ली और वे आजीवन उनका पेटा पूरा करने में लगे रहे। अपने बच्चों को कर्जदार बनाकर और स्वयं फेफड़े आदि की बीमारियों से ग्रस्त होकर अपनी जीवन-लीला को समाप्त कर लिया।

केलादेवी पंचायत के लकरुकी गांव में कुल 15-20 घर हैं। इनमें से 32 लोग खानों में काम कर रहे हैं। यहां का भरतराम मीणा, सुगन चमार, खानों में काम करते हुए टी.बी. की बीमारी से मर गये। यहीं का रामस्वरूप मीणा (30) अभी थोड़े दिन पहले खान में काम करते हुए अपनी एक आँख दे बैठा। वह अब बिलकुल कमजोर व काम करने लायक नहीं रहा। परन्तु इसकी बीमारी में खान-मालिकों ने आज तक कोई मदद नहीं की। दी हुई पेशगी वसूलने की धमकियों की चिन्ता रामस्वरूप को और अधिक कमजोर बना रही है।

राजकुमार 32 वर्षों से खान में काम कर रहा था। इसे क्षयरोग हो गया। अब यह खान में काम करने योग्य नहीं रहा। इन्होंने श्रीपत व करोड़ी की खान में काम किया था। इन्हें भी केवल अपनी पेशगी वसूलने की चिन्ता है। लेकिन एक व्यक्ति और उसका परिवार जीवन-मरण के बीच जूझ रहा है, इसकी चिन्ता किसे होगी ?

यह कहानी केवल लकरुकी गांव की ही नहीं है। ऐसा तो श्री विष्णु गोयल, 'केला देवी' के अनुसार इनके पूरे क्षेत्र के सैकड़ों गांवों में है। यह आम बात है। ये कहते हैं, जब किसी ने पैसा लिया तो लेने वाले को वापस लौटाने की चिन्ता होनी ही चाहिए।

इस क्षेत्र के खनन-मजदूर कानून के अनुसार बंधुआ मजदूर की श्रेणी में आते हैं। जिन मजदूरों को कहीं पर भी काम करने की स्वतन्त्रता नहीं हो 'वह बंधुआ मजदूर है'। इस क्षेत्र के मजदूर यदि एक बार पेशगी लेने के बाद पत्थर खराब होने के कारण या बीमारी के कारण कर्ज पूरा नहीं कर पाये तो ये वर्षों-वर्ष तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी कर्जदार होकर किसी दूसरे के यहां काम करने के लिए नहीं जा सकते हैं, इसलिए वे बंधुआ मजदूर हैं।

खान-मालिकों के माफिया का डर इन्हें बना रहता है। जिस कारण कई बार तो बीमार होते हुए भी इन्हें काम करना पड़ता है।

करौली से लेकर सरमथुरा तक पूरे डांग क्षेत्र में प्राय: पट्टियाँ निकलती हैं। ये पट्टियाँ मकानों की दीवाल-छत बनाने से लेकर अब नये भवनों में शोभा बढ़ाने 'पत्थर की दीवालों के ऊपर चिपकाने' से लेकर खम्भे, नक्काशी के दरवाजे, कंगूरे आदि के काम आती हैं। अब तो सड़क के किनारे दोनों तरफ इन पत्थरों की चिराई व घिसाई का काम घर-घर में होता दिखाई देता है। लेकिन इस पूरे व्यवसाय का मुनाफा केवल चन्द परिवारों को ही मिलता है, पत्थर काटने वाला या खदान से निकालने वाला चाहे जो हो। इनकी आर्थिक, सामाजिक-सांस्कृतिक सभी प्रकार से हालत खराब है। जब हम बहादुरपुर की एक खदान में कुछ मजदूरों से बातचीत करने पहुंचे, वहां वे जिस पानी को पीते हैं, वह जिस हालत में जमीन से निकाला जाता है, यह देखकर तो मन प्रसन्न हुआ, क्योंकि यहां अभी जल-स्तर ऊपर ही है; लेकिन इसे गन्दी हालत में पीते हुए देखकर मन काफी दु:खी हुआ। जहां पर वे काम कर रहे हैं, पत्थर निकाल रहे हैं, वे कभी-कभी पत्थर निकालने के लिए बारूद काम में लेते हैं। यह बारूद, उन के पैरों की मिट्टी सब उस पानी में घुलती है। उस पानी को ये खान से निकालकर पी लेते हैं।

करौली से सरमथुरा की तरफ जाते हुए झींगापुर गांव से थोड़ा आगे सड़क के पास ही खान में पानी पीने के लिए बनाई गई छोटी-सी कुण्डी मिली जो लगभग 5 फुट गहरी थी, लेकिन इसकी लम्बाई-चौड़ाई मुश्किल से एक-डेढ़ फुट थी। यहां के मजदूरों ने बताया कि इससे दिन भर में दो बाल्टी पानी निकलता है। इसमें यहां काम कर रहे सभी मजदूरों को अपने पीने के पानी का काम चलाना पड़ता है।

यहां के मजदूरों का कोई रजिस्ट्रेशन नहीं किया जाता। यहां काम कर रहे रामधन मीणा ने बताया कि हम एक साल में चार ट्रक से लेकर 8 ट्रक पत्थर मुश्किल से खोद पाते हैं। दो हजार रु. प्रति ट्रक की दर से हमें मजदूरी मिलती है। हमें बहुत अच्छी खान मिल जाये और हम बीमार भी न हों और सब कुछ अच्छा चले, तब हम साल भर में आठ ट्रक पत्थर निकाल सकते हैं, जिससे हमें 16000 रु. की वार्षिक आमदनी हो सकती है। कई बार तो ऐसा होता है कि हम महीनों मेहनत करके खान के पत्थर निकालने के लिए सफाई करते हैं और यदि नीचे खराब या सख्त पत्थर मिल जाता है, तो सब मेहनत बेकार चली जाती है। पेशगी दी हुई रकम से या दूसरी जगह से कर्जा लेकर भी रोटी खाते हैं। इससे हमारा कर्जा और बढ़ता ही जाता है।

पूरे खनन-क्षेत्रों के गांवों को देखकर यह बात कही जा सकती है कि पहले की अपेक्षा कुछ पक्के मकानों की संख्या तो बढ़ी है। साथ ही साथ इन मकानों में रहने वाली युवा विधवाओं, विकलांग व बीमार लोगों की संख्या भी दूसरे क्षेत्रों की अपेक्षा बढ़ी है। मोटे तौर पर यह बात कही जा सकती है कि इन खदानों में केवल बलाई व मीणा जाति के लोग ही काम करते हैं। ये दोनों जातियां आज भी पूर्णतया इसी पत्थर के काम पर निर्भर नहीं हैं, साथ ही साथ पशु-पालन व खेती भी करती हैं। इनका पहले जो गुजारा खेती से चलता था, अब वहां से हटकर पत्थर की तरफ बढ़ रहा है। इसलिए कई परिवार अच्छा पत्थर नहीं निकालने तथा बीमारियों या दुर्घटना होने की स्थिति में कंगाली से लाचार होकर बंधुआ-जीवन जीने को मजबूर हो जाते हैं।

ऐसा लगता है कि जिस प्रकार यह खनन-उद्योग चल रहा है, इससे क्षेत्र में लोगों का भविष्य खतरे में है। खनन-क्षेत्र के भ्रमण के दौरान लगभग 22 गांवों की जानकारी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि खदानों में काम करने वालों की हालत बद से बदतर

होती जा रही है। खदानों से कुछ लोगों को रोजी व रोटी तो मिल रही है, लेकिन इसके बदले में लोग जो चुका रहे हैं, अपने श्रम, बीमारी तथा विकलांग होने के रूप में, वह बहुत ज्यादा है। यदि खनन-मजदूर अपनी व्यावसायिक दुर्घटनाओं तथा स्वास्थ्य की क्षतिपूर्ति की मांग करें तो अभी जो खान-मालिकों को अपनी तिजोरी भरती हुई दिखाई देती है, वह सब खाली हो जायेगी; और यदि पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण क्षतिपूर्ति की बात उठाई जाये तो यह खनन-उद्योग उसी दिन बन्द करना पड़ेगा; क्योंकि यह खुला खनन जितना पर्यावरण को दूषित करता है उससे कई गुना ज्यादा वहां की पारिस्थितिकी को बिगाड़ देता है, जिसको पुन: वैसा ही करना कत्तई संभव नहीं है। यह बिलकुल ठीक वैसा ही है, जैसे किसी युवक की गर्दन काटकर उसे पुन: जीवित करना।

अभी राजस्थान में अरावली को पुन: हरा-भरा करने हेतु साढ़े तीन सौ करोड़ रुपये खर्च किये जा रहे हैं; लेकिन पहाड़ियां जैसी खनन से पहले हरी-भरी थीं, पूरे राजस्थान में अब एक भी पहाड़ी वैसी नहीं है।

अत: आज हम एक हाथ से इन पहाड़ों को खनन करके बरबाद कर रहे हैं, तो दूसरे हाथ से इन पहाड़ों को हरा-भरा करने के लिए यहां की गरीब जनता के नाम पर कर्ज बढ़ाये जा रहे हैं ; जबकि इस का लाभ किसी भी तरह गरीब मजदूर को नहीं मिल रहा है, बल्कि खनन-क्षेत्रों के मजदूर तो दोहरी मार खा रहे हैं – एक तरफ प्रकृतिप्रदत्त हरे-भरे जंगलों की कटाई होने से शुद्ध वातावरण का बिगाड़ होना दूसरी तरफ इस बिगाड़ को सुधारने के नाम पर कर्जदार बनाना। इसका सीधा संबंध इस क्षेत्र के मजदूरों से इसलिए है कि जब ये क्षेत्र हरे-भरे थे, तो इन्हीं मजदूरों के पशु यहां चरते थे। यहां की घास-पत्ते खाकर अपना पेट भरते थे। बिना कुछ खर्च किये इन्हीं मजदूरों 'गांववासियों' को भर-पेट घी-दूध मिलता था। खानों से इन्हीं के गोचर-जंगल समाप्त हुए हैं।

डांग क्षेत्र जो एक जमाने में चारे के लिए प्रसिद्ध था, थार रेगिस्तान की गायों का भी पेट भरता था। अब यह क्षेत्र इस क्षेत्र के पशुओं का भी पेट भरने योग्य नहीं रहा। इस चराई को लेकर हर वर्ष तनाव होता है। लोग मरते हैं। पहले जो गायें यहां आती थीं, उनसे भी इस इलाके का चारा कम नहीं होता था। अब चारे की कमी के कारण यहां गायें नहीं आतीं, बल्कि भेड़ें आती हैं। भेड़ें भी यहां से भूखी जाती हैं। यहां के पशु तो भूखे रहते ही हैं। यह 'दाता' क्षेत्र कर्जदार होता जा रहा है।

यहां के कर्जदाता भी बहुत अजीब हैं। ये शराब की बोतल उधार में नहीं देते, बल्कि बोतल खरीदने के लिये कर्ज देते हैं। इस कर्जे के बदले में उनके पास जो भी कुछ है, उसको गिरवी रख लेते हैं। अब तो खानों में काम करने वाले मजदूरों की ऐसी हालत है कि उनमें से ज्यादातर के पास गिरवी रखने के लिए भी कुछ नहीं बचा है। इस क्षेत्र के खनन-उद्योग में महिलाएं व बच्चे भी काम करते हैं, लेकिन इनकी संख्या अधिक नहीं है। एक महिला-मजदूर की जोड़ी का कहना है कि पत्थरों के साथ काम करते-करते हमारा जीवन भी पत्थर की तरह हो गया है। यहां धूप में पड़े हुए गर्म पत्थरों से ट्रक भरवा रही थीं, और पत्थर इतने गर्म थे, कि मैं तो एक मिनट से ज्यादा उन पत्थरों को छू नहीं सकती। पत्थरों से ट्रक भरने वाली महिला व बच्चे के दोनों हाथों की रेखाएं मिट गई हैं। ठीक उस तरह, जिस तरह उनकी कर्म की रेखाएं भी अब मिट गई हैं। ये रेखायें बदलने वाली नहीं हैं। ट्रक के पास खड़े यह बात बाबू जाट ने कही।

क्या सचमुच करौली क्षेत्र में खदानों में काम करने वाले मजदूरों की काम करते मिटी हुई हाथ की रेखाएं उनके कर्म-बन्धन का संकेत देती हैं, या इनके जीवन में भी रेखाओं के बदलने का चक्र जारी रहेगा ? वैसे तो हम जानते हैं कि इस क्षेत्र में चलने वाला खनन ज्यादातर अवैध है जो कभी भी बन्द हो सकता है, पर क्या खनन के बन्द होने से इनकी कर्म- रेखा बदल जायेगी ? ❑

7

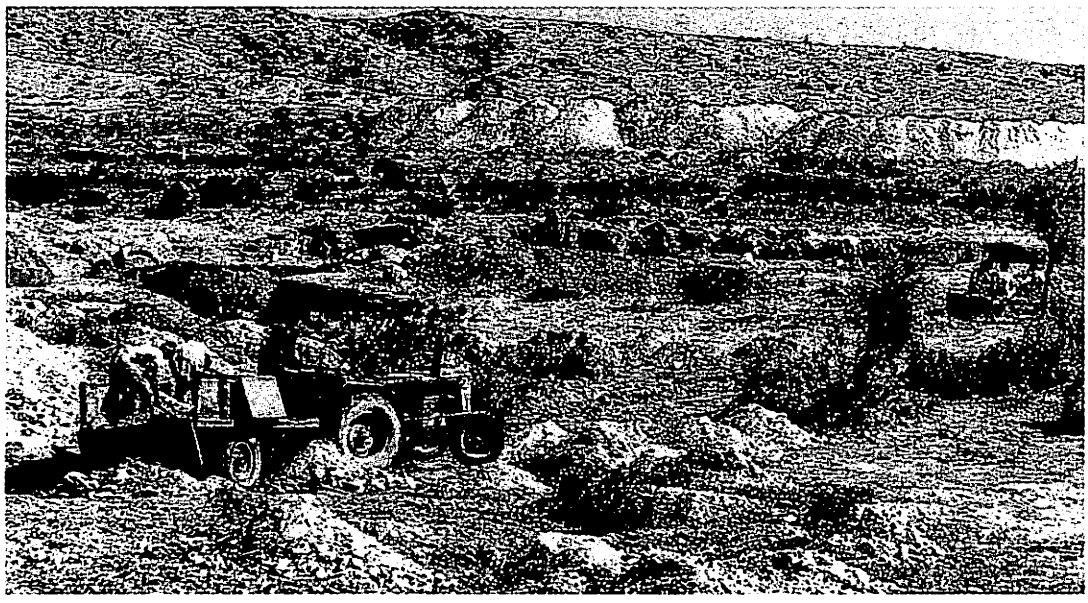

वन्य जीव अभयारण्य जमुवारामगढ़ में अवैध खनन में पिसते मजदूर तथा मरते वन्य जीव

31 मई 1982 को जमुवारामगढ़ वन्य क्षेत्र को 'वन्य 'जीव अभयारण्य' घोषित किया गया। यह तीन सौ वर्ग कि.मी. का वन्य जीव अभयारण्य जयपुर शहर से 25 कि.मी. उत्तर-पूर्व में है। इस क्षेत्र के सरिस्का वन्य क्षेत्र से जुड़े होने के कारण यहां बाघ, बघेरा, जरख, भेड़िया, गीदड़, नीलगाय, साम्भर जैसे जंगली जानवर तथा धोक, ढांक, सालर, जामुन, पीपल, बरगद जैसे कीमती पेड़ हैं। रामगढ़ जैसी झील तथा रायला जैसे कई बांध यहां हैं, जिनमें जल के जानवर भी मौजूद हैं। यह जैविक विविधता से परिपूर्ण क्षेत्र अब इसमें चल रही 70 अवैध खदानों से नष्ट होता जा रहा है।

वैसे तो इस क्षेत्र में डिगोता की एकमात्र खान ही पुरानी है; लेकिन अब सरकारी रिकॉर्ड के मुताबिक मारबल की खानें इस क्षेत्र में चल रही हैं। गोलछा ग्रुप की अकेली खान 10 वर्ग कि.मी. के क्षेत्र में फैली है, 8 खानें एक से आधा वर्ग कि.मी. की हैं, बाकी शेष 32 खानें डेढ़ वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल से कम की हैं।

12 मार्च, 1996 को राजस्थान सरकार ने अपने पत्रांक खअ/ जय/ मार्च, 1995-96 के द्वारा जे.एम.डी.एस. डिगोता को 10 वर्ग कि.मी. वन्य जीव अभयारण्य के क्षेत्रफल को अनारक्षण करने देने हेतु प्रस्ताव भारत सरकार को भेजा है। 4 वर्ग कि.मी. दूसरी खानों का भी एक संयुक्त प्रस्ताव भारत सरकार को भेजने की प्रक्रिया पूरी कर ली है। राजस्थान सरकार के दोनों पत्रों से एक बात साफ है, कि यह सरकार हर कीमत पर वन व वन्य जीवों के घरों को उजाड़ कर भी खनन जारी रखने के लिए दृढ़-संकल्प है।

यहाँ सरकारी रिकॉर्ड के अनुसार 40 खानें डोलामाइट की हैं जो कि बाजार में मारबल के नाम से बेचा जा रहा है। शेष 30 खानें बिना सरकारी रिकॉर्ड के चालू हैं जो न तो रायल्टी देती हैं और न ही उनके पास कोई खनन-रसीद है। उनकी जब कभी पकड़ होती है तो ये दूसरे के नाम पर पैनल्टी भर कर या ले-देकर छूट जाते हैं। अभयारण्य में चलने वाली खदानें सानकोटडा, आंधी, रायला, बिगोता, किलचपुरी, रायशाला, श्रीराम गोपालपुरा, नेताला, नाभाला के नाम से जानी जाती हैं।

सब खानों में सबसे अधिक, लगभग आधे मजदूर, डिगोता की खान में काम करते हैं। वैसे कुल मिलाकर दो हजार मजदूर यहां खानों में काम करते हैं। खानों पर मजदूरी का कोई रजिस्टर नहीं है, काम करने वाले घटते-बढ़ते रहते हैं। वैसे अब बड़ी-बड़ी मशीनें लगने के कारण मजदूरों की संख्या सतत कम हो रही है। जो हैं, या काम कर रहे हैं, उनमें से अधिकतर मजदूरों को सिलीकोसिस, ट्यूबरकुलोसिस आदि भयावह जानलेवा बीमारियां हैं।

इस क्षेत्र में काम करने वाले मजदूर अधिकतर दैनिक मजदूरी पर काम करते हैं। दस फीसदी बाल मजदूर, बीस फीसदी महिलाएं हैं। अब महिलाओं की संख्या दिन-प्रति-दिन कम होती जा रही है। काम करने वाले मजदूरों के पांवों में जूते तक नहीं हैं। सिर आदि तो बिलकुल नंगे रहते ही हैं। सुरक्षा का कोई उपाय यहां इस क्षेत्र में दिखाई नहीं देता। 'गोलछा' की डिगोता खान को छोड़कर किसी खान में कहीं भी सुरक्षा नियम की पालना नहीं होती। चिकित्सा की कोई सेवा यहां नहीं है। डिगोता-खान के अलावा कहीं फर्स्ट एड बक्स तक नहीं है। दुर्घटना की स्थिति में खान-मालिक के विरुद्ध कोई मुकदमा नहीं कर सकते। मरने वालों को कभी-कभी एक लाख रु. तक गोलछा की खान में मुआवजा दिया गया। एक-दो बार बिना मुआवजा दिये ऊपरी तौर पर वैसे ही निपटा दिये। इस क्षेत्र में पेशगी का चलन कम है, इसलिए बंधुआ मजदूरों की संख्या बहुत कम है।

यहां महिला, पुरुष को बराबर की मजदूरी नहीं मिलती। श्रम-कानूनों और मानवीय मूल्यों का यहां सौ फीसदी उल्लंघन हो रहा है। यहां कुछ दिन पूर्व केवल डिगोता की खान में एक यूनियन बनी थी, अब तो वह भी टूट गई। पूरे खनन-क्षेत्र में कहीं भी खनन-मजदूरों को कोई संगठन नहीं बनाने दिया जाता।

कोई मजदूर खान-क्षेत्र से लापता है, तो इसकी जिम्मेदारी किसी खान-मालिक पर नहीं डाली गई, क्योंकि मजदूरों का रिकॉर्ड रखने को कोई बाध्य नहीं है।

खान के खड्डों में आये दिन पालतू पशु व जंगली जीव गिर कर मरते रहते हैं। ये सब खानें जंगली जीवों की कोरीडोर में हैं, इसलिए जब भी पशु या जंगली जानवर रात या दिन में भूल से इधर चला जाता है, तो खानों के मलबे में या खड्डे में फंसे बिना नहीं बचता। मरने से बच भी जाये तो यहां काम करने वाले मजदूर उसे मारकर खा जाते हैं।

इन खानों में काम करने वाले लोग तो खैर की लकड़ी से भोजन बनाते ही हैं, जयपुर जाने वाले ट्रकों में पत्थरों के साथ कभी-कभी कीमती लकड़ी भी जाती है। जहां अब खनन चालू हुआ है, वहां पर पांच-सात वर्ष पहले तक धोक का गहरा जंगल था।

पहले जंगल कटवाये, फिर पहाड़ खोदने शुरू किये। इन पहाड़ों की खुदाई का मलबा वर्षा-जल के साथ खेती की जमीन पर जाकर जमता है, कहीं कटाव करता है। इस क्षेत्र में भूमि कटाव अपेक्षाकृत ज्यादा है। इससे खेती की पैदावार पर असर पड़ता है। अब उत्पादन घट गया है। इस क्षेत्र के किसान अब मजदूर व बंधुआ मजदूर बनने के लिए मजबूर हैं। परिवार भी टूट रहे हैं, क्योंकि यहां महिलाएं तो स्थानीय हैं, पुरुष बाहर के हैं। महिलाओं के साथ जो यहां व्यवहार होता है, वह शर्मनाक है। इस क्षेत्र के गांव में विधवाओं की संख्या सतत बढ़ रही है। जो व्यक्ति इन खुली खदानों में 5 वर्ष काम कर लेता है। वह किसी ना किसी बीमारी का शिकार हो जाता है। फिर वह जितना कमाता है, उससे उसकी दवाई-मुली का काम ही चलता है। पांच-सात वर्ष बीमार रहकर गुजारता है। लेकिन वह काम करने योग्य तो बिलकुल नहीं रहता।

खान-क्षेत्रों के गांव उजड़े हुए, निष्प्राण जैसे लगते हैं। बहुत बड़ी संख्या में यहां के मजदूर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर चुके हैं, या विकलांग हो चुके हैं। उनके रुहांसे प्रभाव गांव-गांव में स्पष्ट दिखाई देते हैं। एक छोटा-सा गांव है दारोलाई जिसमें खनन नहीं होता, जबकि इनके पास जमीन भी कम है। सिंचाई की सुविधा भी यहां उपलब्ध नहीं है। दूसरा गांव है डिगोता जिसके लोग बहुत समय से खनन-मजदूरी कर रहे हैं। इनके पास जमीन दारोलाई की अपेक्षा अधिक एवं सिंचित है। फिर भी इस गांव में जीवन को चलाने वाली तथा मानव को सजीव व स्वस्थ बनाये रखने वाली सुविधाएं बहुत कम हैं। यह सांस्कृतिक रूप से कंगाल तथा सामाजिक रूप से पिछड़ा व गरीब लगता है। यहां बीमार, विकलांग पुरुष तथा विधवा महिलाएँ अधिक हैं। गांव सुनसान तथा उजड़ा-सा दिखता है, जबकि दारोलाई में सजीवता व रौनक दिखाई देती है।

दारोलाई गांव के लोग पशुपालन व खेती से अपना गुजारा करते हैं। यहां भी इसके अलावा कोई धन्धा या व्यापार या सरकारी नौकरी नहीं है। फिर भी शान्ति व सन्तोष के साथ आनन्द से रहकर अपनी गुजर-बसर करते हैं। खनन से पहले डिगोता के लोग भी दारोलाई गांव की तरह अमन-चैन से रहते थे।

जमुवारामगढ़ का खनन-उद्योग गांव का अमन-चैन समाप्त कर रहा है। जंगलों को बरबाद कर रहा है। जंगली जानवरों के जीने का हक छीन रहा है। वन्य जीव-संरक्षण अधिनियम की धज्जियां उड़ा रहा है। वन-संरक्षण कानून की हत्या कर रहा है। खान-विभाग के लिए यह शर्मनाक स्थितियां बना रहा है। पर्यावरण-सन्तुलन हेतु जारी अधिसूचना व कानून के लिए तो यह खनन-गतिविधि एक चुनौती है। बिना किसी स्वीकृति के चलने वाली यह जमुवारामगढ़ अभयारण्य के बीच की प्रक्रिया हम सबके साझे भविष्य को खतरे में डालने वाली है।

जयपुर शहर के लिए तो जमुवारामगढ़ तथा नाहरगढ़ अभयारण्य फेफड़े जैसे अमूल्य क्षेत्र हैं। इनमें होने वाले पर्यावरण प्रदूषण से बचने का हमने समय रहते इलाज नहीं किया तो इसके बिगड़ने की हमें बहुत बड़ी कीमत चुकानी होगी। इसलिए जयपुर शहर के लोग भी जागें तथा इस खनन-गतिविधि को तुरन्त बन्द करावें। ❑

❑❑❑

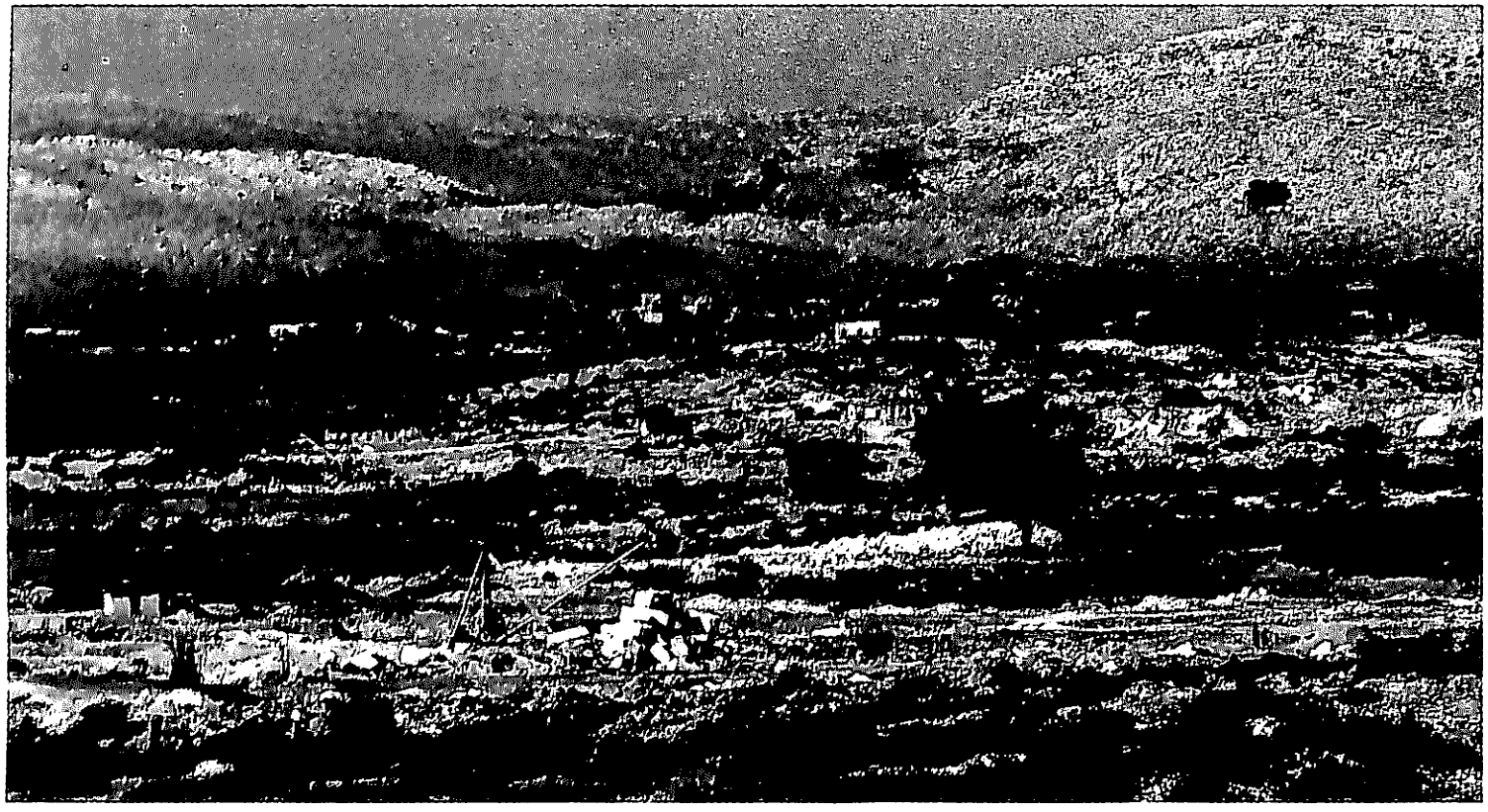

तरुण भारत संघ

लेखक : रामजन्म चतुर्वेदी • फोटो : रजनीकांत यादव • प्रथम संस्करण : अक्टूबर 1998 • मूल्य : 30/- रु.

मुद्रक : कुमार एण्ड कम्पनी, जयपुर